

---

## इकाई-1 निर्वाचन आयोग संरचना, कार्य, भूमिका

---

### इकाई की रूपरेखा

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 भारत में निर्वाचन आयोग
  - 1.3.1 निर्वाचन/चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली व कार्य
  - 1.3.2 निर्वाचन/चुनाव आयोग की प्रमुख शक्तियां
  - 1.3.3 समयानुसार सख्त होता चुनाव आयोग
- 1.4. मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति
  - 1.4.1 मुख्य चुनाव आयुक्त के कार्य व अधिकार
- 1.5 चुनाव आयोग की निष्पक्षता पर सवाल
- 1.6 निर्वाचन आयोग व अन्य समितियों द्वारा चुनाव सुधार के प्रयास
- 1.7 सारांश
- 1.8 शब्दावली
- 1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 1.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

निर्वाचन आयोग अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिये बदलते समाज, राजसत्ता तथा प्रौद्योगिकी के अनुसार तेजी से अपने आप को ढाल रहा है। भारतीय राजनीति जो अपनी सीमाओं से बाहर होते जा रही थी उस पर निर्वाचन आयोग ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए नियंत्रण लगाने का सफल प्रयास किया है। अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए निर्वाचन आयोग ने भारतीय राजनीति में लोकतांत्रिक व्यवस्था की उत्तरोत्तर मजबूती का साक्ष्य दिया है।

भारतीय चुनाव आयोग एक स्वायत्त एवं अर्ध न्यायिक संस्थान है। जिसका गठन भारत में स्वतंत्र व निष्पक्ष रूप से विभिन्न राज्यों भारत के प्रतिनिधिक संस्थानों में प्रतिनिधि चुनने की प्रक्रिया को सुचारू रूप से संचालित कराने के लिये किया गया। भारतीय चुनाव आयोग की स्थापना 25 जनवरी 1950 को की गयी। आयोग में वर्तमान में एक मुख्य चुनाव आयुक्त व दो चुनाव आयुक्त होते हैं। 1950 में जब निर्वाचन आयोग का गठन किया गया तब यह केवल एकल सदस्यीय निकाय था। 25 जनवरी 1950 से 15 अक्टूबर 1989 तक यह केवल एक सदस्यीय निकाय के रूप में कार्य करता रहा। 16 अक्टूबर 1989 से 1 जनवरी 1990 तक यह आर.वी.एस.शास्त्री मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयुक्त के रूप में एस.एस.धनोवा और वी.एस.सहगल सहित तीन सदस्यीय निकाय बन गया। इसके संरचना में एक बार फिर परिवर्तन हुआ 2 जनवरी 1990 से 30 सितम्बर 1993 तक यह फिर एकल सदस्यीय निकाय बना। निर्वाचन आयोग की संरचना को फिर परिवर्तित करते हुए 1 अक्टूबर 1993 से इसे पुनः तीन सदस्यीय निकाय बना दिया गया। वर्तमान में निर्वाचन आयोग तीन सदस्यीय निकाय के रूप में हमारे देश में कार्य कर रहा है।

## 1.2 उद्देश्य

- इस इकाई में हम निर्वाचन आयोग के उन सभी पहलुओं का अध्ययन करेंगे जिनसे हमें चुनावी प्रक्रिया को समझने में सरलता होगी।
- इस इकाई के द्वारा हम ये भी समझेंगे कि निर्वाचन/चुनाव आयोग का गठन कब हुआ उसके क्या कार्य हैं?
- निर्वाचन आयोग कैसे कार्य करता है और इतने विषालदेश में चुनाव जैसे कार्यक्रमों को सफल बनाने में कैसी कार्यप्रणाली का प्रयोग करता है। यह भी हम इस इकाई में जानेंगे।

### 1.3 भारत में निर्वाचन आयोग

भारतीय लोकतंत्र में चुनाव प्रक्रिया के अलग-अलग स्तर हैं। लेकिन मुख्य तौर पर भारत के संविधान में पूरे देशके लिये एक लोकसभा और पृथक-पृथक राज्यों के लिये एक विधानसभा का प्रावधान है। भारतीय संविधान के भाग-15 में अनुच्छेद 324 से अनुच्छेद 329 तक निर्वाचन की व्यवस्था की गयी है। अनुच्छेद 324 निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण का निर्वाचन आयोग में निहित होना बताता है। संविधान के अनुच्छेद 324 में ही निर्वाचन आयोग को चुनाव सम्पन्न कराने की जिम्मेदारी दी है। 1989 तक निर्वाचन आयोग केवल एक सदस्यीय संगठन था लेकिन 16 अक्टूबर 1989 को एक राष्ट्रपतीय अधिसूचना के द्वारा दो और निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति की गयी। और इस प्रकार निर्वाचन आयोग को पुनः तीन सदस्यीय संगठन बना दिया गया। लोकसभा की कुल 543 सीटों के लिये अलग-अलग राज्यों से प्रतिनिधि चुने जाते हैं। ठीक इसी प्रक्रिया से अलग-अलग राज्यों की विधानसभाओं के लिये अलग-अलग संख्या में विधायकों का चुनाव किया जाता है। नगरीय चुनाव निकाय का प्रबन्धन राज्य निर्वाचन आयोग करता है। जबकि लोकसभा व विधानसभा चुनाव भारत निर्वाचन आयोग के नियंत्रण में होते हैं। जिसमें वयस्क मतधिकार प्राप्त मतदाता प्रत्यक्ष मतदान के माध्यम से सांसद व विधायकों का चुनाव करते हैं। लोक सभा व विधानसभा दोनों का ही कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है। लोकसभा तथा विधान सभा चुनावों के लिये सबसे पहले निर्वाचन आयोग अधिसूचना जारी करता है। अधिसूचना जारी हो जाने के बाद सम्पूर्ण निर्वाचन प्रक्रिया के तीन भाग होते हैं-

- नामांकन
- निर्वाचन
- मतगणना

निर्वाचन की अधिसूचना जारी हो जाने के बाद नामांकन पत्रों को दाखिल करने के लिये सात दिनों का समय मिलता है। इसके बाद एक दिन उसकी जाँच पड़ताल के लिये रखा जाता है। इसमें अन्याय कारणों से नामांकन पत्र रद्द भी किये जा सकते हैं। तत्पश्चात दो दिन नाम वापसी के लिये दिये जाते हैं। ताकि वो उम्मीदवार जिन्हें किन्हीं कारणों से चुनाव नहीं लड़ना है वे आवश्यकविचार विनिमय के बाद अपने नामांकन पत्र वापस ले सकें। 1993 तथा 1996 के लोकसभा चुनावों में विशिष्ट कारणों से नाम वापसी का समय चार दिन रखा गया था। परन्तु सामान्यतः यह कार्य दो दिनों में ही पूरा किया जाता रहा है। कभी-कभी किसी क्षेत्र में पुनः मतदान की स्थिति पैदा होने पर उसके लिये अलग से दिन तय किया जाता है। जो नितान्त रूप से निर्वाचन आयोग का एकाधिकार है। मतदान के लिये तय किये गये केन्द्रों में मतदान का समय प्रातः सात बजे से लेकर सायं पाँच बजे तक रखा गया है। यहाँ एक बात ध्यान देने की यह है कि भारत में वोट देने की कोई कानूनी बाधकता नहीं है। यह नागरिकों का अधिकार है कर्तव्य नहीं। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति एवं राज्य सभा सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष रूप से होता है। इन्हें जनता द्वारा चुने गये जनप्रतिनिधि चुनते हैं। चुनाव के समय

समस्त प्रशासनिक मशीनरी चुनाव आयोग के नियंत्रण में कार्य करती है। चुनाव की घोषणा होने के पश्चात आचार संहिता लागू हो जाती है। हर राजनीतिक दल, उसके कार्यकर्ता व उम्मीदवार को इसका पालन करना पड़ता है।

### 1.3.1 निर्वाचन/चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली व कार्य

हम ऊपर इस बात को जान चुके हैं कि निर्वाचन आयोग व निर्वाचन आयुक्त सम्बन्धि व्यवस्था का वर्णन संविधान के पंद्रहवें भाग में किया गया है। भारतीय शासन व्यवस्था में हमारे संविधान ने निर्वाचन आयोग को विशेष महत्व दिया है। संविधान सभा के सदस्य हृदय नाथ कुंजरू के अनुसार- "यदि चुनाव व्यवस्था दोषपूर्ण है या अकुशल है या ऐसे व्यक्तियों द्वारा संचालित है जिनकी निष्ठा सन्देहपूर्ण है, तो प्रजातंत्र के सूत्र में ही जहर घुल जायेगा, इसी कारण हमारे देश में निर्वाचन के विषय को संवैधानिक मान्यता दी गयी है।" संविधान निर्माताओं ने निर्वाचन आयोग को संविधान का आधार अंग माना है।

- निर्वाचन आयोग के पास यह उत्तरदायित्व है कि वह निर्वाचन का पर्यवेक्षण, निर्देशन तथा अयोजन करवाये।
- निर्वाचन आयोग राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संसद, राज्य विधान सभा के चुनाव करवाता है।
- यह निर्वाचन नामावली तैयार करवाता है।
- राजनीतिक दलों का पंजीकरण करता है।
- राजनीतिक दलों का राष्ट्रीय, राज्य स्तर के दलों के रूप में वर्गीकरण करता है तथा मान्यता प्रदान करता है।
- यह दलों, निर्दलियों को चुनाव के समय चुनाव चिन्ह देने का काम करता है।
- सांसद व विधायकों की अयोग्यता (दल-बदल को छोड़ कर) पर राष्ट्रपति व राज्यपाल को सलाह देने का काम करता है।
- गलत निर्वाचन उपायों का उपयोग करने वाले व्यक्तियों को निर्वाचन के लिये अयोग्य घोषित करता है।

### 1.3.2 निर्वाचन/चुनाव आयोग की प्रमुख शक्तियां

भारत के संविधान का अनुच्छेद 324(1) निर्वाचन आयोग को निम्न शक्तियां प्रदान करता है-

१. सभी निर्वाचनों का पर्यवेक्षण, नियंत्रण व आयोजन अपने विवेकानुसार करना।
२. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयानुसार अनुच्छेद 324(1) में निर्वाचन आयोग की शक्तियां कार्यपालिका द्वारा नियंत्रित नहीं हो सकती। उसकी शक्तियां केवल उन निर्वाचन सम्बन्धि संवैधानिक उपायों तथा संसद निर्मित विधि से नियंत्रित होती है।
३. निर्वाचन का पर्यवेक्षण, निर्देशन व नियंत्रण का आयोजन कराने की शक्ति में देश में मुक्त, भयविहीन व निष्पक्ष चुनाव कराने के लिये निर्वाचन आयोग असीमित शक्ति रखता है। यद्यपि प्राकृतिक न्याय, विधि का शासन तथा उसके द्वारा शक्ति का सदुपयोग होना चाहिए।
४. निर्वाचन आयोग विधायक निर्मित विधि का उल्लंघन नहीं कर सकता और न ही ये स्वेच्छा पूर्ण कार्य कर सकता है। उसके निर्णय न्यायिक पुनरीक्षण के पात्र होते हैं।
५. निर्वाचन आयोग की शक्तियां निर्वाचन विधियों की पूरक हैं कि उन पर प्रभावी तथा वैध प्रक्रिया से बनी विधि के विरुद्ध प्रयोग नहीं की जा सकती है।
६. निर्वाचन आयोग चुनाव का कार्यक्रम निर्धारित कर सकता है। चुनाव चिन्ह आवंटित करने तथा निष्पक्ष चुनाव कराने के निर्देश देने की शक्ति रखता है।
७. निर्वाचन आयोग की शक्तियों की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि- वह एक मात्र अधिकरण है जो चुनाव कार्यक्रम निर्धारित कर सकता है और चुनाव कराना केवल उसी का कार्य है।
८. जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के अनुच्छेद 14 व 15 भी राष्ट्रपति व राज्यपाल को निर्वाचन अधिसूचना जारी करने का अधिकार निर्वाचन आयोग के सलाह के अनुरूप ही देता है।

### 1.3.3 समयानुसार सख्त होता चुनाव आयोग

चुनाव के समय चुनाव आयोग ही उच्चतम प्रशासनिक संस्था के रूप में कार्य करता है। उस समय चुनाव आयोग का आदेश अंतिम व सर्वमान्य होता है। चुनाव आयोग की शक्ति क्या है? कानून की शक्ति किसे कहते हैं? और शक्ति का प्रयोग कैसे किया जा सकता है? इसको सबसे पहले पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एन.शेषन ने पूरे देश व दुनिया के सामने प्रस्तुत किया। टी.एन.शेषन भारतीय चुनाव आयोग के 10वें मुख्य चुनाव आयुक्त थे। उनका कार्यकाल 12 दिसम्बर 1990 से 11 दिसम्बर 1996 तक रहा। टी.एन.शेषन ने कानून की शक्ति का सबसे प्रभावशाली प्रयोग करके

सारेदेशको चुनाव आयोग की शक्ति से परिचित करा दिया। इनके कार्यकाल से पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त आम आदमी की जानकारी में प्रायः अनभिग्य ही था। शेषन काल से ही आम आदमी को निर्वाचन/चुनाव आयोग व मुख्य निर्वाचन आयुक्त की भूमिका व उसकी शक्ति का पता चला। आज अपनी शक्ति व कार्यशैली के कारण ही चुनाव आयोग आम सुर्खियों में आ गया है। शेषन ने ही भारतीय राजनीति में जड़ जमाती जोड़-तोड़ की राजनीति, बेईमानी, अपराधी प्रवृत्ति के उमीदवारों, धनबल, बाहुबल पर नकेल डालने का सफल प्रयास करके सारी दुनियाँ के सामने स्वच्छ छवि वाले अधिकारी के रूप में स्वयं को प्रस्तुत किया। उन्होंने आने वाले चुनाव आयुक्तों के लिये नजीर पेश कर इमानदारी की परम्परा स्थापित कर दी। तब से अब तक राजनीतिक दल और उनके सदस्य जो भी मुख्य चुनाव आयुक्त बनता है उससे सहम कर रहते हैं।

पिछले आम चुनावों से निर्वाचन/चुनाव आयोग ने चुनावों को और निष्पक्ष व भयमुक्त कराने के लिये कठोर दिशा निर्देश जारी कर दिये। नियमों को कठोर बनाते हुए उनका पालन कड़ाई से करने के भी आदेश जारी किये गये। इसका एक उदाहरण- पिछले आम चुनावों में मध्यप्रदेश में देखने को मिला। मध्य प्रदेश के पर्यटन मंत्री तुकोजीराव पवार और एक पूर्व सांसद उमीदवार फूलचंद वर्मा को रिटर्निंग आफिसर से बतमीजी करने के आरोप में प्रकरण दर्ज कर जेल भेज दिया। इस घटना से सभी उम्मीदवार व कर्मचारी भयभीत हो गये। चुनाव आयोग के इस शक्ति प्रदर्शन से पूरीमशीनरीमें हड़कम्प मच गया। निर्वाचन आयोग ने जब अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया तो जिला अधिकारी, पुलिस अधिकारी व अन्य शासकीय कर्मचारी अपने काम करने में गंभीरता के साथ जुट गये। सभी अधिकारी कर्मचारी रात के 12-12 बजे तक काम में लगे रहे। अब चुनाव आयोग ने सभी कर्मचारियों व अधिकारियों की समय सीमा तय कर दी है। और उसी समय के भीतर उन्हें अपना कार्य पूरा करना होता है। सिर पर नोटिस, कारण बताओ पत्र, निलम्बन, बर्खास्तगी की तलवार हमेशा सब के ऊपर लटकी रहती है चाहे व अधिकारी हो या कर्मचारी। उम्मीदवार भी सोच समझ कर कदम रख रहे हैं। सभी उम्मीदवारों ने निर्वाचन आयोग के नियमों का सही से पालन करने के लिये दो-दो वकील व चार्टर्ड एकाउन्ट रखना आम बात हो गयी है। ताकि चुनाव लड़ने वाला उम्मीदवार या उसका दल आयोग को सभी लेखा-जोखा समय पर दे सके। अब उम्मीदवार को दैनिक खर्च को ब्यौरा भी आयोग को देना होता है। चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को सम्पत्ती का ब्यौरा आयोग के सामने स्पष्ट करना होता है। चुनाव आयोग के कठोर नियमों के चलते उम्मीदवार झण्डे-डण्डे, स्पीकर, बैनर, पोस्टरों पर सतर्कता बरत रहे हैं। अब उम्मीदवार इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि किससे मिलना है और किससे चुनाव के दौरान दूरी बना के रखनी है ताकि चुनाव आयोग के संदेह के घेरे में न आ जायें। चुनाव आयोग ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर नई चुनाव शैली का शुभारंभ किया है। जिसने इस देश के लोकतंत्र को और मजबूती देने का काम किया है।

भारत में चुनाव आयोग ने एक और महान व उल्लेखनीय काम करके सुर्खिया बटोरी हैं। चुनाव आयोग ने पर्यावरण संरक्षण को ले कर भी अनूठा व अभिनव प्रयोग किया है। यहाँ एक बात ये ध्यान देने की है कि सन 2004 में आम चुनावों में आयोग ने 'पेपरलैस' चुनाव का प्रयोग किया। जो सफल रहा। पेपरलैस चुनाव से तात्पर्य था कि चुनावों में कागज का कम से कम प्रयोग करना। इस मुहीम को सफल बनाने के लिये आयोग ने लगभग प्रत्येक राज्य में प्रत्येक मतदान केन्द्र पर इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन(ई.वी.एम.) से मतदान करवाया। ई.वी.एम. से मतदान करवा कर चुनाव आयोग ने देशका करोड़ों टन कागज बचाया। कागज के बचाने का प्रयाय हैपेड़ों का संरक्षण। पेड़ों को संरक्षित करने का मतलब है पर्यावरण का संतुलन प्रदान करना। यह चुनाव आयोग की नई व अनुरूपणीय पहल है। इसी क्रम में चुनाव आयोग ने एक और अनूठा प्रयोग किया वो था 'प्लास्टिक पर बैन'। अब चुनाव आयोग के निर्देशों के चलते कोई भी प्रत्याशी या पार्टी प्लास्टिक के बिल्ले, बैनर, झण्डिया, पोस्टर, स्टीकर आदि नहीं बनवा सकता है। आयोग ने सभी जिलाधिकारियों को सख्त आदेश दिये हैं और सार्वजनिक सूचना भी दी है कि जो भी प्रशासनया स्क्रीन प्रिंटिंग वाले प्लास्टिक की सामग्री छापेंगे उन्हें तुरन्त काली सूची में डाल दिया जायेगा और उन पर कड़ी कार्यवाही की जायेगी। ये चुनाव आयोग का सीधे जड़ पर प्रहार है। यह सर्वविदित है कि प्लास्टिक पर्यावरण के लिये घातक है चुनाव आयोग का ये फैसला पर्यावरण संरक्षण व सामाजिक जीवन के पक्ष में एक क्रान्तिकारी कदम ही कहा जायेगा।

#### 1.4. मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति

भारत में मुख्य चुनाव आयुक्त व अन्य आयुक्तों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। मुख्य चुनाव आयुक्त का कार्यकाल 6 वर्ष या 65 साल, जो पहले हो होता है। जबकि अन्य चुनाव आयुक्तों का कार्यकाल 6 वर्ष या 62 वर्ष जो पहले हो होता है। मुख्य चुनाव आयुक्त का सम्मान व वेतन सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान होता है। मुख्य चुनाव आयुक्त को संसद द्वारा महाभियोग चला कर पदच्युत किया जा सकता है। मुख्य चुनाव आयुक्त राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर रहता है। वह राष्ट्रपति को अपना त्याग पत्र देकर पद मुक्त हो सकता है। उसके सेवाकाल में उसके वेतन व उन्मुक्तियों को कम नहीं किया जा सकता है।

##### 1.4.1 मुख्य चुनाव आयुक्त के कार्य व अधिकार

मुख्य चुनाव आयुक्त के कार्य व अधिकार निम्न हैं-

1. वह संविधानों के प्रावधानों व संघीय व प्रान्तीय व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानूनों के अनुसार संसद, राज्य व्यवस्थापिकाओं व स्थानीय स्वशासनों की मतदाता सूची तैयार व संशोधित करने का कार्य करता है।

2. संविधान के प्रावधानों तथा संसद व राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित कानूनों के अनुसार राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति संसद व राज्य विधान मण्डलों के चुनाव सम्बन्धी कार्य का निरीक्षण, निर्देशन व नियंत्रण करता है।

3. वह राष्ट्रपति या राज्यपाल को, जिसका सम्बन्ध हो, किसी सदन के सदस्य की अयोग्यता के बारे में परामर्श देता है।

4. चुनाव सम्बन्धी अनियमितता के बारे में उठे सन्देहों व विवादों की जाँच के लिये चुनाव अधिकारी नियुक्त करने का दायित्व उसी का है।

5. अपने दायित्वों का भलि-भाँति निर्वाह करने के लिये वह राष्ट्रपति को क्षेत्रीय निर्वाचन आयुक्त नियुक्त करने का सुझाव दे सकता है।

6. वह राष्ट्रपति या राज्यपाल से निर्वाचन कार्य सम्पन्न कराने के लिये उचित मात्रा में कर्मचारी माँग सकता है।

7. वह निर्वाचन के समय चुनाव चिन्ह सम्बन्धी विवादों को निपटाता है।

8. वह मीडिया के सभी माध्यमों के द्वारा चुनाव की सभी गतिविधियों व निर्देशों को जनता तक पहुँचाता है।

9. वह चुनाव क्षेत्र परीसीमन आयोग की लिपिकीय त्रुटियों को उनकी पूर्व अनुमति से ठीक कर सकता है।

10. वह चुनाव आलेखों व चुनाव प्रक्रिया के सम्बन्ध में जनमत को शान्त करने के लिये संकटग्रस्त क्षेत्रों की यात्रा कर सकता है। वह जनसंचार के माध्यमों का प्रयोग कर सकता है।

11. वह किसी भी व्यक्ति को न्यायिक निर्णय द्वारा आरोपित अयोग्यता से मुक्ति दे सकता है।

12. वह विशेष परिस्थितियों में पुनः निर्वाचन का आदेश दे सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त चुनाव आयोग का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है। उसके कार्य व क्षेत्राधिकार उसे और भी अधिक महत्वपूर्ण व शक्तिशाली बनाते हैं। लेकिन हम जानते हैं कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में कोई भी कानून से ऊपर नहीं है। हर अधिकारी अपने काम के लिये जवाबदेह हैं जिससे निरंकुषता का खतरा नहीं रहता है। 1978 के 44वें संविधान संशोधन द्वारा राष्ट्रपति को चुनाव आयुक्त से ये पूछने का अधिकार दिया गया कि



क्या किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू रहते हुए चुनाव कराना सम्भव है? इस परामर्शीय मत के प्रावधान के कारण राष्ट्रपति व मुख्य निर्वाचन अधिकारी को राजनीति के अखाड़े में खींचा जा सकता है। संविधान सभा के सदस्य हृदय नाथ कुजूरू व सिब्बनलाल सक्सेना ने भी प्रधानमंत्री के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति को राजनीतिक रूप में प्रभावित होने की आशंका व्यक्त की थी। लेकिन यहाँ ध्यान देने वाली बात ये हैं कि आज तक प्रधानमंत्री के परामर्श से जो भी नियुक्तियाँ राष्ट्रपति ने की वे सभी पदाधिकारी सत्य निष्ठा व उच्च न्यायिक इमानदारी के धारक रहे हैं।

### 1.5 चुनाव आयोग की निष्पक्षता पर सवाल

जैसा कि हम जानते हैं भारत विशाल बहुसंस्कृति, बहुभाषी, बहुरंग-रूपी देश है। ऐसे विशालकाय देश में शान्ति पूर्ण चुनाव कराना एक बड़ी सफलता है। जिसे चुनाव आयोग बड़े संयम के साथ निभाता आ रहा है। लेकिन फिर भी कभी-कभी उसकी निष्पक्षता को लेकर सवाल खड़े होते रहे हैं। चुनाव आयोग पर अक्सर ये आरोप लगता रहा है कि वो सत्तारूढ़ दल का पक्ष लेता है। चुनाव आयोग पर पक्षपात करने का आरोप लगता रहा है। ये भी कहा जाता रहा है कि चुनाव आयोग सत्ताधारी दल से प्रभावित रहता है जिससे निष्पक्ष चुनाव नहीं हो पाते हैं। 1971 के बाद से चुनाव आयोग पर इस प्रकार के आरोपों की वृद्धि होती रही है। टी.एन.शेषन पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त जो अपनी इमानदारी व सत्यनिष्ठा के कारण दूसरों के लिये प्रेरणाश्रोत माने जाते हैं उनके विरुद्ध भी ये आरोप लगाया गया। जनता दल व अन्य दलों ने उनके विरुद्ध महाभियोग लाने का प्रयास भी किया। भले ही इसकी निष्पक्षता पर संदेह किया जाता रहा हो लेकिन पिछले चुनावों को देखते हुए ये कहा जा सकता है कि चुनाव आयोग की भूमिका अब तक पूर्णतया निष्पक्ष रही है। भारत में अब तक के चुनावों में हांलाकि चुनाव आयोग पर प्रत्यक्ष रूप से पक्षपात का कोई आरोप नहीं लगा है लेकिन चुनाव के दौरान उसमें कुछ दोष देखने में आये हैं। जिनको हम निम्न रूप में देख सकते हैं-

१. अल्पमत की जीत-भारत में जिस उम्मीदवार को सबसे अधिक वोट मिलते हैं वह विजयी होता है। लेकिन कई बार ऐसा देखने में आता है कि अन्य उम्मीदवारों को मिले मतों की कुल संख्या विजयी उम्मीदवार को मिल मतों की संख्या से अधिक होती है। कहने का तात्पर्य ये है कि विजयी उम्मीदवार को जनता का समर्थन प्राप्त नहीं होता है लेकिन उसका मतप्रतिशत अधिक होने के कारण उसे विजयी घोषित किया जाता है।

२. चुनावों में धनखर्च की प्रवृत्ति- चुनाव आयोग ने धन खर्च को लेकर पार्टी व प्रत्याशी दोनों के लिये कड़े नियम बना दिये हैं लेकिन फिर भी बड़े पैमाने पर धन का खर्च किया जा रहा है। चुनावों में खर्च किये जाने वाले धन की कोई सीमा नहीं है। चुनाव आयोग ने चुनाव सामग्री को लेकर तो नियम कड़े

किये हैं लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से आज भी चुनावों में बड़े स्तर पर धन लगाया जा रहा है। राजनीतिक दलों को अपने आय-व्यय का ब्यौरा फॉर्म 24-ए में भर कर देना पड़ता है। लेकिन अब भी सियासी दल इसको भरने में कतराते रहते हैं। कई राज्यों के बड़े नेताओं व मुख्यमंत्रियों ने इस फॉर्म को भरने में कोताही भरती है। वित्तीय वर्ष 2007-08 में भाजपा व कांग्रेस के कई नेताओं ने भी 24-ए नहीं भरा। इससे ये बात साफ हो गयी कि राजनीतिक चन्दे के नाम पर सियासी दलों में कुछ तो संदेहात्मक है।

३. मतदाताओं की निष्क्रियता-चुनाव आयोग स्वच्छ व निष्पक्ष चुनाव करने के लिये भरसक प्रयास कर रहा है लेकिन यह चुनाव आयोग की कमी ही कही जायेगी वो आज भी जनता को चुनाव में मतदान करने के लिये प्रेरित नहीं कर पाया है। दिन पर दिन मतदान प्रतिशत गिरता जा रहा है। अवैध रूप से मतदान का स्तर बढ़ा है। फर्जी मतदान की घटनाएं अक्सर चर्चाओं में आती है। मतों व मतदाताओं की खरीद फरोस्त आम बात है। इन घटनाओं को लेकर चुनाव आयोग सवालियों के घेरे में रहा है।

४. सत्ता प्राप्त दल द्वारा प्रशासन का गलत प्रयोग- चुनावों की घोषणा होते ही और अधिसूचना जारी होते ही सत्ता में बैठा हुआ दल सत्ता के दम पर प्रशासन का जम के फायदा उठाने की भरसक कोशिश करता है। प्रशासन का इच्छापूर्ति तक प्रयोग करता है। ऐसा भी देखा गया है कि सत्ता प्राप्त दल सरकारी तन्त्र को नवीन योजनाएं कार्यान्वित करने तथा चुनावों में अनियमितताएं करने के लिये दबाव बनाता है।

५. चुनाव में गुण्डा तत्वों का प्रयोग-किसी भी कीमत में चुनाव जीतने के लिये राजनीतिक लोग गुण्डा तत्वों का प्रयोग करने लगे हैं। बूथों पर कब्जा, जाली मत का प्रयोग करना, आतंक पैदा करना, मतपेटी को बदलने जैसी घटनाओं को अंजाम देने के लिये ऐसे तत्वों का प्रयोग राजनीतिक दल व उम्मीदवार खूब कर रहे हैं। इधर के कुछ वर्षों में एक और नई परम्परा का उदय हुआ है। अब राजनीति में अपराधियों का सीधे तौर पर प्रवेश हो गया है। अपराधी प्रवृत्ति के आदमी में ये समझ पैदा हुई है कि जिन नेताओं के लिये वो काम कर रहे हैं अंततः सत्ता का लाभ नेता ही लेता है। इसलिये अब अपराधियों ने इस लाभ को स्वयं लेने के लिये राजनीति में प्रवेश किया है। राजनीतिक दल पहले चुनावों में अपराध को मुख्य मुद्दा बना कर चुनाव लड़ते थे अब अपराधियों के चुनाव में आ जाने के कारण व राजनीति का अपराधीकरण होने के कारण ये मुद्दा राजनीतिक दलों ने अपने ऐजेंडे से बाहर कर दिया है। चौदहवीं लोक सभा में 200 से ज्यादा ऐसे सदस्य थे जिन पर अपराधिक मामले दर्ज थे। यदि अनुमान लगाया जाये तो देशभर में चुने गये प्रतिनिधियों में लगभग 20 प्रतिशत ऐसे प्रतिनिधि हैं जिनके खिलाफ अपराधी मामले दर्ज हैं। चुनाव आयोग राजनीति में बढ़ते अपराधियों की संख्या में नियंत्रण करने में लगभग असफल रहा है। चुनाव आयोग के लाख प्रयासों के बाद भी राजनीति में अपराधियों का प्रवेश होता रहा है। जिस कारण चुनावों की सत्यता

संदिग्ध हुई है। राजनीति में सभ्य व भले लोगों, गरीब लोगों ने प्रवेश करना लगभग खत्म कर दिया है।

### 1.6 निर्वाचन आयोग व अन्य समितियों द्वारा चुनाव सुधार के प्रयास

चुनावों में निरन्तर सुधार की आवश्यकता रही है। चुनाव को निष्पक्ष, स्वच्छ, भयमुक्त बनाने के लिये निर्वाचन आयोग व अनेकों समितियों ने गंभीर प्रयास किये हैं। जिनके परिणामस्वरूप आज भारत में चुनावों प्रक्रिया की स्थिति में सुधार हुआ है। चुनाव सुधारों को लेकर समय-समय पर निर्वाचन आयोग व गठित विभिन्न समितियों ने अपने सुझाव व निर्णय दिये। कुछ महत्वपूर्ण समितियों के सुझाव निम्नलिखित हैं।

1. तारकुण्डे समिति (1974)- सिटीजन फॉर डेमोक्रेसी संस्था द्वारा चुनाव प्रक्रिया में सुधारों को लेकर वी.एम. तारकुण्डे की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। जिसने अपने महत्वपूर्ण सुझाव दिये-

- मतदान की आयु को 18 वर्ष करना। जिसे 61वें संविधान संशोधन द्वारा कर दिया गया।
- समिति ने दूसरा महत्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा कि राजनीतिक दलों के आय-व्यय का हिसाब रखा जाये तथा चुनाव आयोग इसकी जाँच करे। यह सुझाव अब स्वीकार कर क्रियान्वित कर दिया गया है।
- प्रत्येक उम्मीदवार को सरकार मतदान कार्ड छाप कर निःशुल्क उपलब्ध कराये तथा प्रचार सामग्री को भी डाक से निःशुल्क भेजने की व्यवस्था हो।
- जो भी राजनीतिक दलों को धन दान करे ऐसी संस्था, व्यक्ति को आयकर से छूट मिलने का प्रावधान हो।
- ऐसी स्थिति के आने पर जब लोकसभा या विधानसभा भंग हो जाये, सरकार कामचलाऊ तरीके से काम करती रहे जब तक की चुन कर सरकार नहीं बन जाती। कामचलाऊ सरकार अधिसूचना जारी होने के बाद व सरकार बनने तक कोई महत्वपूर्ण निर्णय न ले।
- ऐसे व्यक्ति जो मंत्री पद धारण किये हुए हैं चुनाव के समय वो सरकारी वाहनों का प्रयोग न करें और न ही सरकारी धन व तंत्र का प्रयोग करें।

- लोक सभा व विधान सभा के चुनावों में नामांकन शुल्क 2000 रूपया व 1000 रूपया किया जाये।

2.श्यामलाल शकधर वदिनेशगोस्वामी समिति- तत्कालीन चुनाव आयुक्त श्यामलाल शकधर ने 1981 में पहली बार मतदाताओं को परिचय पत्र देने की सिफारिष की। इसे हाथों हाथ स्वीकार कर मतदाताओं को परिचय पत्र देने पर जोर दिया जाने लगा। ये महत्वपूर्ण सुझाव था। शकधर के इस सुझाव के कारण ही आज प्रत्येक मतदाता का परिचय पत्र होता है। इस सुझाव ने जाली मतदान में बड़ी सीमा तक अंकुष लगा दिया। इसके बाददिनेशगोस्वामी की अध्यक्षता में एक और समिति का गठन किया गया जिसने अपनी सिफारिषें देते हुए कहा कि

ऐसे मतदान क्रेन्द्र जिनके बूथों पर कब्जा किया गया हो पुनः मतदान कराया जाये - भारत बहुभाषीय, बहुजातीय देश हैं इसलिये प्रत्येक समुदाय को चुनाव लड़ने का मौका दिया जाना चाहिए। जिससे ऐसा तबका जो मुख्यधारा में नहीं आ पा रहा है उस समाज का व्यक्ति होने से उस समाज में राजनीतिक चेतना का विकास होगा और वह मुख्य धारा से जुड़ेगा। इसके लिये सीटों के आरक्षण हेतु चक्राकार पद्धति अपनायी जाये।

चुनाव से सम्बन्धित याचिकाओं को शीघ्र निस्तारित किया जाये।

ऐसा प्रयास किया जाये कि मतदान इलेक्ट्रॉनिक मशीन से हो।

जो स्थान किन्ही कारणोंवश रिक्त हो गया हो या रह गया हो उसे स्थान पर छः महीने की अन्दर चुनाव करा लिये जायें। साथ ही मतदाताओं को परिचय पत्र देने की सिफारिस दिनेश गोस्वामी समिति द्वारा भी की गयी।

3. के.सन्थानम समिति व टी.एन.शेषन की सिफारिषें- के. सन्थानम की अध्यक्षता में गठित समिति ने चुनाव को लेकर महत्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा कि चुनाव में भाग लेने वाले प्रत्याशी के लिये न्यूनतम शैक्षिक अर्हता निर्धारित की जानी चाहिए। राजनीतिक दलों का पंजीकरण व संविधान को लेकर स्पष्ट नियम बनाये जायें। निर्वाचन अधिकारियों को निर्वाचन आयोग के अधीन किया जाये तथा दोशी निर्वाचन अधिकारियों पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाये तथा इसका अधिकार मुख्य निर्वाचन आयुक्त को हो। निर्वाचन नामावलियों को हमेशा अद्यतन रखा जाये तथा समय-समय पर निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन किया जाये। चुनाव सुधारों को लेकर तत्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एन.शेषन ने महत्वपूर्ण सुझाव दिये। उन्होने कहा कि- लोकसभा तथा विधान सभा चुनावों के उम्मीदवारों के लिये नामांकन शुल्क क्रमशः रूपया 5000 तथा 2500 किया जाये। साथ ही

उन्होंने ये भी सुझाव दिया कि लोक सभा के उम्मीदवारों के लिये 10 प्रस्तावकों व 10 समर्थकों का होना आवश्यक हो तथा राज्य विधान सभा के उम्मीदवारों के लिये 10 समर्थकों का होना आवश्यक अनिवार्य हो। इसके साथ ही एक उम्मीदवार एक ही स्थान चुनाव लड़े। एक उम्मीदवार के दो स्थानों से चुनाव लड़ने में प्रतिबन्ध हो। चुनाव प्रचार केवल 14 दिन तक ही किया जाये। मतदाताओं को पहचान पत्र जारी किये जाये। बूथों पर कब्जा व मतपेटी छीनने व अनाधिकार मतदान करने वालों को संज्ञेय अपराधों की श्रेणी में रखा जाये। आचार संहिता का पालन न करने वाले प्रत्याषियों को 5 वर्ष के लिये अयोग्य घोषित किया जाये।

4. इन्द्रजीत समिति-1998 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ सांसद इन्द्रजीत गुप्त की अध्यक्षता में गठित समिति ने अपने सुझाव (अगस्त 2000) में चुनाव सुधारों को लेकर कहा कि राजनीतिक दलों को चुनाव में व्यय करने हेतु धनराशि सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जानी चाहिए। चुनाव खर्चों के लिये एक सार्वजनिक कोष स्थापित किया जाये। जिसमें सरकार प्रतिवर्ष 600 करोड़ रुपये की राशि का योगदान करे। इतनी ही राशि का योगदान राज्यों से भी होना चाहिए।

5. वर्तमान मुख्य चुनाव आयुक्त कुरैशी के सुझाव- वर्तमान मुख्य निर्वाचन आयुक्त शाहबुद्दीन याकूब कुरैशी ने सुझाव देते हुए कहा कि आदर्श आचार संहिता लागू होने के साथ ही जनमत सर्वेक्षण पर भी पाबंदी लगायी जाये। कुरैशी ने कहा कि जिस तरह से चुनाव आयोग को राजनीतिक दलों के पंजीकरण का अधिकार है उसी तरह से फर्जी दलों को अमान्य करने का भी अधिकार चुनाव आयोग को होना चाहिए। उन्होंने कहा कि भारत में वर्तमान में 1200 दल हैं। इसमें से 150 सक्रिय राजनीति में हैं। जबकि शेष फर्जी हैं। धनबल व पेड न्यूज पर लगाम लगायी जाये। उन्होंने सुझाव देते हुए कहा कि अपराधिक रिकार्ड वाले लोगों को चुनाव लड़ने से रोका जाये। मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने ये भी सुझाव दिये कि चुनाव में सरकारी धन का प्रयोग नहीं होना चाहिए। आयोग के अध्यक्ष का मानना है कि यदि ऐसा किया जाता है तो राजनीतिक दलों को अधिक पैसा मिलेगा। जिससे धन का दुरुपयोग बढ़ेगा। उन्होंने सुझाव दिया कि उम्मीदवारों की अयोग्यता की अवधि को तीन से बढ़ा कर पाँच साल कर दिया जाये। साथ ही उन्होंने सुझावों में ये भी कहा कि चुनाव आयोग मतदाताओं को पर्ची बाँटेगा जिसमें चुनाव चिन्ह होंगे। ऐसा शीघ्र ही पं. बंगाल में होने वाले चुनावों में किया जायेगा। ऐसा करने के पीछे प्रमुख कारण ये हैं कि चुनाव से 48 घंटे पहले जो राजनीतिक दल पर्चीयाँ बाँटते वक्त मतदाताओं को उपहार व धन देने का प्रयास करते हैं उन पर नियंत्रण किया जा सकेगा। शीघ्र होने वाले पं. बंगाल, तमिलनाडू, केरल, असम, पांडेचेरी में विधान सभा चुनावों में यही प्रणाली अपनायी जायेगी।

## 1.7 सारांश

आज भारत में चुनाव एक चुनौती के रूप में देखे जाते हैं। आजादी से आज तक चुनाव की प्रणालियों में परिवर्तन आया है। पहले चुनाव लोकतंत्र के सबसे बड़े पर्व की तरह देखे जाते थे। मेले की तरह चुनावों में उत्साह देखा जाता था। हर मतदाता चुनावों में बड़-चढ़ कर भागेदारी करता था। लेकिन आज चुनाव व मतदाता दोनों में परिवर्तन आया है। चुनावों में प्रवेश करते अपराधी तत्वों के कारण चुनाव आयोग भी सख्त हुआ है। मतदान का प्रतिशत गिरा है। इन्हीं सब चर्चाओं को लेकर ये अध्याय हमने पढ़ा। इस इकाई से हमने ये जानने व समझने का प्रयास किया कि चुनाव आयोग क्या हैंवो कैसे काम करता है। उसकी कार्य प्रणाली क्या है। चुनाव आयोग का सबसे बड़ा मुखिया उसका अध्यक्ष होता है जिसे मुख्य निर्वाचन आयुक्त कहा जाता है। भारत में चुनावों की चुनौतियों को देखते हुए मुख्य निर्वाचन आयुक्त का भी दायित्व बढ़ा है। इस इकाई में हमने मुख्य निर्वाचन आयुक्त को कैसे चुना जाता है उसके क्या कार्य व शक्तियाँ होती हैं इस पर विस्तृत चर्चा की। भारत एक विशाल देश है जहाँ कई भाषा व संस्कृति के लोग एक साथ निवास करते हैं। जिसके चलते चुनावों को सफलता तक ले जाना कठिन काम होता है। इसके लिये चुनाव प्रक्रिया में समय-समय पर सुधार किये जाते रहे हैं। जिसके लिये कई समितियों व विद्वानों ने अपने सुझाव दिये हैं जिससे चुनाव प्रक्रिया में समय-समय पर सुधार किया जाता रहा है। इस पर भी इस इकाई में विस्तृत चर्चा की गयी। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि निर्वाचन आयोग को जानने के लिये यह इकाई लाभप्रद होगी।

### 1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. .भारत का संविधान-दुर्गादास बसु
2. राजनीति चिंतन की रूपरेख -ओ.पी.गाबा
3. .संपादक-राजकिशोर -भारत का राजनीतिक संकट
4. .सुभाष कश्यप-हमारी संसद
5. .सुभाष कश्यप-हमारा संविधान

### 1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. .बालमुकुन्द अग्रवाल-हमारी न्यायपलिका
2. .एस.एम.सईद-भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

### 1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में निर्वाचन आयोग की भूमिका व कार्य प्रणाली को समझाएं?
2. .निर्वाचन आयोग शक्तिशाली हैं इस पर अपने विचार दीजिए?

3. आज निर्वाचन आयोग आम आदमी की हर समस्या के साथ खड़ा है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?
4. मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति व उसकी शक्तियों को समझाइये? बताएं कि उसे पदच्युत कैसे किया जा सकता है?
5. भारत में चुनाव एक चुनौती बनते जा रहे हैं जिस कारण चुनाव आयोग भी सख्त होता जा रहा है। इस पर अपने विचार लिखिये?
6. भारत में चुनाव सुधारों को लेकर लेख लिखिये?

---

**इकाई २**

---

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 प्रतिनिधि लोकतंत्र में राजनीतिक दल
- 2.4 स्वतंत्रता पूर्व के राजनीतिक दल
- 2.5 स्वतंत्रता के पश्चात के राजनीतिक दल और उनकी विशेषताएं
  - 2.5.1 राजनीतिक दल का संगठन और उसको संचालित करने का मौलिक अधिकार
  - 2.5.2 राजनीतिक दलों की बहुलता के साथ एक दलीय प्रभुत्व
  - 2.5.3 प्रभावशाली विपक्ष का ना होना
  - 2.5.4 दलीय प्रणाली निर्माण की प्रक्रिया में
  - 2.5.5 राजनीतिक अस्थिरता
- 2.6 सारांश
- 2.7 शब्दावली
- 2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.11 निबंधात्मक प्रश्न



## 2.1 प्रस्तावना

व्यवस्थापिका कार्यपालिका में संबंध के आधार पर संसदीय शासन प्रणाली, शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत के आधार पर अध्यक्षतात्मक शासन प्रणाली विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यहां भारत का अध्ययन कर रहे हैं भारत की दलीय प्रणाली की बात करना चाहते हैं। इसलिए भारत में किस प्रकार की शासन प्रणाली अपनाई गई है सबसे पहले उसका जिक्र करना है। भारत में लोकतंत्र की स्थापना की गई है और उसके प्रकार के रूप में देखा जाए तो संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई है। हम जानते हैं आप सभी अपने पूर्व की कक्षा में पढ़ चुके हैं की संसदीय शासन प्रणाली की मुख्य विशेषता व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का घनिष्ठ संबंध अर्थात् कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही होता है। दूसरी प्रमुख विशेषता है कि यहां नाम मात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद पाया जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75 (३) स्पष्ट उल्लेख है की मंत्रिपरिषद जिसे कार्यपालिका कहते हैं यह सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदाई है।

जैसा कि स्पष्ट है कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है। संसदीय शासन प्रणाली, प्रतिनिधि शासन प्रणाली भी कहते हैं। अर्थात् इसमें शासन जनता के प्रतिनिधि के द्वारा किया जाता है और यह सीधे जनता के प्रति उत्तरदाई होते हैं।

## उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

1. भारत में शासन के प्रमुख रूप के बारे में जान सकेंगे
2. भारत में लोकतंत्र में दलीय प्रणाली के बारे में अध्ययन कर सकेंगे
3. स्वतंत्रता के पूर्व व स्वतंत्रता के बाद के दल और उसकी कार्यशैली के बारे में जान सकेंगे

### 2.3 प्रतिनिधि लोकतंत्र में राजनीतिक दल

यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक की प्रतिनिधि लोकतंत्र के संचालक में राजनीतिक दलों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि लोकतंत्र को व्यवहारिक धरातल पर उतारने के लिए यह आवश्यक है नियतकालिक चुनाव | एक निश्चित समय पर चुनाव हो | सभी नागरिकों को मत का अधिकार तथा चुनाव की प्रक्रिया में नागरिकों को अनेक विकल्प उपलब्ध हों | विकल्पों की उपलब्धता जिसमें अपनी पसंद के विकल्प के रूप में प्रत्याशी को मत देकर विजयी बनाया जा सके | इसलिए यहां पर यह उल्लेखनीय है की संसदीय लोकतंत्र के संचालन इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए विकल्पों के रूप में राजनीतिक दलों की उपस्थिति होती है | राजनीतिक दल ही अपनी प्राथमिकताओं अपने मूल्यों और सिद्धांतों के आधार पर जनता से समर्थन मांगते हैं | उसके आधार पर जनता प्रत्याशियों को मतदान करने या न करने का या किसे करना है निर्णय लेते हुए मतदान करते हैं और अपने प्रतिनिधि का चुनाव करते हैं | इस प्रकार से प्रतिनिधि लोकतंत्र के संचालन ,उत्तरदाई लोकतंत्र के संचालन में संसदीय लोकतंत्र में राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण और अनिवार्य भूमिका है |

क्योंकि अलग-अलग देशों के सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक परंपराएं अलग-अलग होती हैं इसलिए राजनीतिक दलों की संरचना उनकी कार्यप्रणाली उनकी प्राथमिकताएं उनके आदर्श उनके गंतव्य, उनके लाभ इनमें भी भिन्नता पाई जाती है | कई बार दो अलग-अलग, दो या दो से अधिक अलग-अलग देशों में कितनी प्रकार की शासन प्रणाली अपनाई जाती है | सामाजिक सांस्कृतिक संरचना में भिन्नता के कारण राजनीतिक राजनीतिक दलों की संरचना और कार्य प्रणाली में भी भिन्नता दिखाई देती है और यह बात भारत के भी संदर्भ में लागू है | भारत में राजनीतिक दलों के उद्भव के विषय को ध्यान में रखकर बात करें इसको हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं -स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व के राजनीतिक दल |दूसरा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के राजनीतिक दल |

### 2.4 स्वतंत्रता पूर्व के राजनीतिक दल

इस इकाई के अध्ययन है हमें देखेंगे कि किस प्रकार से स्वतंत्रता के पूर्व राजनीतिक दलों का उद्भव हुआ और तत्कालीन परिस्थिति में अर्थात् साम्राज्य काल में राजनीतिक दलों की प्राथमिकताओं और मूल्यों के आधार पर काम किया तथा स्वतंत्रता के बाद अभी तक जो राजनीतिक दल हैं और जो नए राजनीतिक दल बने वह किन मूल्यों और आदर्शों को लेकर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था ,एक नई प्रकार की दलीय प्रणाली के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं |

भारत में दल प्रणाली के उद्भव में 1885 में कांग्रेस की स्थापना विशेष रूप से उल्लेखनीय है | यदि कांग्रेस की स्थापना का उद्देश की काफी अस्पष्टता है क्योंकि स्थापना एक ब्रिटिश अधिकारी ने की |

जिसका उद्देश्य ऐसे संगठन की स्थापना करना था जो ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा के लिए सेफ्टी वाल्व का कार्य कर सकें।

परंतु समय के साथ यह कांग्रेस देश की स्वतंत्रता आंदोलन का वाहक बना, मंच बना, जहां सभी जाति धर्म भाषा क्षेत्र के लोग जो भारत में निवास करते थे अपनी भिन्नता के बावजूद एक मुख्य लक्ष्य अर्थात् स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर के आगे बढ़े। इसलिए कांग्रेस का विकास एक राष्ट्रीय मंच के रूप में होने लगा।

जब स्वतंत्रता प्राप्त हुई उस समय गांधीजी ने इसे समाप्त करने की बात की लेकिन उनके स्वयं के इस बात को इनकार करते हुए सत्ता संघर्ष की प्रक्रिया में कांग्रेस को शामिल करना तत्कालीन नेतृत्व ने उचित समझा और उसी के अनुरूप कार्य किया। जैसा कि हम सभी अवगत हैं कांग्रेस स्वतंत्रता आंदोलन का एक मंच है इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद के चुनाव में कांग्रेस को लगातार बढ़त प्राप्त होती रही, क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के दिनों के पीछी इस बात से अवगत थी कि जिन उद्देश्यों और आकांक्षाओं को लेकर के कांग्रेस के ध्वज तले स्वतंत्रता आंदोलन की लड़ाई लड़ी गई आकांक्षाओं की पूर्ति में निश्चित रूप से यह दल प्राथमिकता के आधार पर कार्य करेगा। इसलिए 1952 के लोकसभा चुनाव से लेकर 1967 तक कांग्रेस बहुत ही प्रभावशाली स्थिति में रही परन्तु 1967 में विधानसभा चुनाव में कई राज्यों में गैर कांग्रेसी गठबंधन सरकारों का गठन हुआ और सत्ता संघर्ष की प्रक्रिया में कांग्रेस को चुनौती मिलने लगी।

इसी के साथ देश स्वतंत्रता के पूर्व 1906 मुस्लिम लीग 1916 में हिंदू महासभा का गठन हुआ। जहां मुस्लिम भारत की स्वतंत्रता के साथ पाकिस्तान की मांग को आगे बढ़ाने के लिए कार्य कर रहा था वहीं हिंदू महासभा हिंदू समाज और संस्कृति को सुरक्षा प्रदान करें और हिंदू राष्ट्र की स्थापना के संकल्प के साथ आगे कार्य जारी रखा। इसके साथ ही देश के विभिन्न हिस्सों में क्षेत्रीय दलों का उद्भव हुआ जिसने अपने अपने क्षेत्र में अल्पकालिक और महत्वपूर्ण राजनीतिक बदलाव की दिशा में कार्य किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व जो एक अन्य महत्वपूर्ण दल था जिसकी स्थापना 1924 हुई वह साम्यवादी दल है। गांधी जी के कहने के बाद भी उनके उत्तराधिकारी ने कांग्रेस को विघटित नहीं किया और स्वतंत्रता आंदोलन के मंच के रूप में कार्य करने वाले कांग्रेसी ने सत्ता संघर्ष की प्रक्रिया में अपने आप को शामिल करते हुए एक राजनीतिक दल के रूप में कार्य करना प्रारंभ किया।

## 2.5 स्वतंत्रता के पश्चात के राजनीतिक दल और उनकी विशेषताएं

उक्त के साथ स्वतंत्रता के पश्चात राजनीतिक दल का गठन हुआ 1951 में जिसका नाम भारतीय जनसंघ तथा 1959 में स्वतंत्र पार्टी का गठन। इस प्रकार से स्वतंत्रता के पूर्व राजनीतिक दल की

स्थापना हुई राजनीतिक दल के रूप में भारत को स्वतंत्र कराना परंतु स्वतंत्रता के पश्चात यही राजनीतिक दल अब अपनी प्राथमिकताओं के साथ चुनाव प्रक्रिया में शामिल होने वाले थे। और इन सब की सामूहिक गतिविधि से भारत में दलीय प्रणाली का विकास हो रहा है। यद्यपि स्वतंत्रता के तुरंत के बाद के समय में कांग्रेस महत्वपूर्ण और प्रभावशाली स्थिति में रही। बाकी विशेष प्रभाव नहीं रखते थे क्योंकि जैसा कि हमने पूर्व में अध्ययन किया है कि क्योंकि कांग्रेस स्वतंत्रता आंदोलन का राष्ट्रीय मंच था इसलिए जनता के विश्वास का भी प्रतीक था। फलस्वरूप स्वतंत्रता के पश्चात के दिनों में कांग्रेस देश के जनमानस की पहली पसंद होने का अवसर प्राप्त हुआ पर 1967 के बाद की चुनाव में देश में बहुत से बदलाव दिखाई देते हैं। यह सभी मिलकर के देश की दलीय प्रणाली को एक रूप देने में अपना योगदान देते हैं और इस दलीय प्रणाली की जो भारत में स्वतंत्रता के बाद के दिनों में संसदीय शासन प्रणाली के संचालक को करते हुए विकसित हुई है, उसकी निम्नलिखित विशेषताएं हैं है-

### 2.5.1 राजनीतिक दल का संगठन और उसको संचालित करने का मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान में भाग 3 में मौलिक अधिकार का प्रावधान किया गया जिसमें वर्तमान समय में छह मौलिक अधिकार इनमें स्वतंत्रता के अधिकार का प्रावधान अनुच्छेद 19 से 22 तक किया गया है। अनुच्छेद 19 प्रत्येक भारतीय नागरिक को संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता प्रदान करता है इस अधिकार का प्रयोग करते हुए देश के किसी भी नागरिक को राजनीतिक दल के संगठन और उस को संचालित करने का अधिकार प्राप्त है। यहां यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है की इस प्रकार के अधिकार लोकतांत्रिक देश में ही पाए जाते हैं किसी सर्वाधिकारवादी देश में या साम्यवादी देश में नहीं पाए जाते हैं।

### 2.5.2 राजनीतिक दलों की बहुलता के साथ एक दलीय प्रभुत्व

क्योंकि भारत में सामाजिक सांस्कृतिक भाषा क्षेत्र धर्म निवास स्थान आदि को ले करके भिन्नता भिन्नता पाई जाती है। इन हितों के प्रतिनिधित्व करने वाली देश में बहुत से दलों का विकास हुआ जहां देश में आज पंजीकृत राजनीतिक दलों की संख्या 500 से अधिक है लेकिन जैसा कि प्रारंभ में हमने यह देखा है यह अध्ययन किया है की स्वतंत्रता के उपरांत यदि आज तक के इतिहास को देखा जाए तो हम पाते हैं कि देश में राजनीतिक दलों की तो बहुलता है। परंतु प्रभुत्व प्रायः एक दल का ही दिखाई देता है क्योंकि स्वतंत्रता के पश्चात प्रथम लोकसभा चुनाव से लेकर 1967 के लोकसभा चुनाव तक कांग्रेसका वर्चस्व दिखाई देता है। 1967 के विधानसभा चुनाव में कुछ राज्यों में गैर कांग्रेसी गठबंधन की सरकारों का गठन हुआ। कांग्रेस को क्षेत्रीय दलों से चुनौती मिली लेकिन 1971 के चुनाव में कांग्रेस बहुमत प्राप्त की। यद्यपि 1977 के चुनाव में कांग्रेस को भारी हार का सामना करना पड़ा और जनता पार्टी को विजय प्राप्त हुई लेकिन 1980 के चुनाव में कांग्रेस मजबूती

के साथ आगे बढ़ी | इसी प्रकार 1984 के चुनाव में इंदिरा गांधी की हत्या के पश्चात हुआ था इसमें कांग्रेस को बड़े पैमाने पर जीत दर्ज हुई और विपक्ष बहुत कमजोर होता हुआ दिखाई दिया | 1989 में कांग्रेस के चुनाव लड़ा उसे बढ़त प्राप्त हुई और कांग्रेस प्रमुख मजबूत विपक्ष के रूप में अस्तित्व में आया लेकिन पुनः 1991 के चुनाव में और बाद के चुनाव में लगातार गठबंधन की सरकारें बनी और एनडीए की सरकारों को छोड़ दिया जाए तो सभी चुनाव में कांग्रेस प्रभावशाली स्थिति में रही अब विपक्ष बहुत मजबूत स्थिति में नहीं रहा इस प्रकार से दिखाई देता है | राष्ट्रीय राजनीति विपक्ष के प्रभाव काफी सीमित दिखाई देते हैं और वर्तमान समय में 2014 और 2019 के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व को काफी बढ़त हासिल हुई जिसमें भारतीय जनता पार्टी प्रमुख भूमिका में दिखाई देती है इस प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात प्रथम आम चुनाव से लेकर वर्तमान समय तक पूरी भारतीय चुनाव प्रणाली में दिखाई देता है कि देश के विभिन्न हिस्सों में क्षेत्रीय आधार पर राजनीतिक दल तो बहुत बड़े पैमाने पर उभरे लेकिन कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो सामान्यतया वह राष्ट्रीय राजनीति में बहुत प्रभावशाली स्थिति में नहीं दिखाई देते और एक दल ही महत्वपूर्ण स्थिति में दिखाई देता है।

### 2.5.3 प्रभावशाली विपक्ष का ना होना

स्वतंत्रता के पश्चात प्रथम आम चुनाव से लेकर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में चुनाव प्रक्रिया को देखते हैं तो एक बात स्पष्ट दिखाई देती है कि देश में प्रायः मजबूत विपक्ष नहीं दिखाई देता है | किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था के संचालन के लिए सशक्त मजबूत और रचनात्मक विपक्ष होना का आवश्यक है क्योंकि वह सरकार को सचेत करता है और जनमानस की आवाज को सरकार तक पहुंचाने का कार्य करता है | चुनाव परिणाम की दृष्टि से देखा जाए तो प्रथम आम चुनाव 1952 से लेकर 1984 तक कांग्रेस महत्वपूर्ण स्थिति में रही है और उसे लोकसभा में 50% से अधिक स्थान प्राप्त हुए , अपवाद के रूप में केवल 1977 के चुनाव में जनता पार्टी को लोकसभा में मिले स्थान को रखा जा सकता है जिसमें उसने बहुमत के आधार पर सरकार का गठन किया | यद्यपि वह सरकार 80 के चुनाव में उसे पराजय का सामना करना पड़ा इसलिए इसके आगे भी जब देखें तो 1980 और 1984 के चुनाव में भी कांग्रेस मजबूत स्थिति में रही | आगे 1989 के चुनाव में गठबंधन की सरकार बनी क्योंकि किसी पार्टी को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ था क्योंकि भारत में विविधता है विविधता के कारण समय के साथ देश में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का उदय हुआ जिसकी वजह से चुनाव में खंडित जनादेश प्राप्त हुए | किसी भी राजनीतिक दल को बहुमत नहीं प्राप्त हुआ जिससे एक गठबंधन की सरकार बनी इसके बाद भी 1991 के चुनाव में भी कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी चल रही लेकिन गठबंधन की ही सरकार बनी | बादके दिनों में भी गठबंधन की सरकार और अस्थिर सरकार दिखाई देती है कि क्योंकि क्षेत्रीय राजनीतिक दल अपनी क्षेत्रीय आकांक्षाओं और उनके नेताओं की व्यक्तिगत आकांक्षाओं के तहत गठबंधन में शामिल तो होकर सरकार बनाने का कार्य कर रहे थे

लेकिन उनकी आकांक्षाएं तुष्ट ना होने की स्थिति में सरकार गिराने का भी कार्य कर रहे थे। यह सिलसिला 1999 तक बड़ी तीव्र गति से चला परंतु 1999 के चुनाव में एनडीए कि सरकार भाजपा के नेतृत्व में बनी जिसने अपने 5 वर्ष के कार्यकाल को पूरा किया बावजूद इसके विपक्ष की संख्या तो काफी थी लेकिन विपक्ष की एकजुटता न होने की वजह से एक मजबूत विपक्ष का उदय नहीं हो पाया। उसके पश्चात 2004 और 2009 के चुनाव में कांग्रेस के नेतृत्व में यूपीए की सरकार बनी जिसने अपने कार्यकाल को पूर्ण किया परंतु एक राजनीतिक दल के रूप में तो सत्ता पक्ष में कोई बहुमत की स्थिति में नहीं था। विपक्ष के रूप में कोई ऐसा राजनीतिक दल नहीं था जो सत्ता पक्ष पर निर्णायक दबाव और प्रभाव बनाने की स्थिति में रहे। यद्यपि 2004 से 2014 तक भारतीय जनता पार्टी ने विपक्ष के रूप में काफी सक्रिय भूमिका करते हुए दिखाई देती है और 2014 के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में गठबंधन की सरकार बनी साथ ही इसमें अभी महत्वपूर्ण बात हुई की इस गठबंधन की सरकार में भारतीय जनता पार्टी एक राजनीतिक दल के रूप में स्वयं में बहुमत प्राप्त दल था। इसलिए एक मजबूत सरकार का गठन हुआ लेकिन विपक्ष की स्थिति पुनः हाशिए पर ही रहे। क्योंकि जहां विपक्ष संख्या बल में कम था वहीं विपक्ष अपनी नीतियों कार्यक्रमों और अपनी प्राथमिकताओं को लेकर के स्पष्ट नहीं था। राष्ट्रीय रुझानों को लेकर के स्पष्ट नहीं था राष्ट्र की आकांक्षाओं को लेकर के स्पष्ट नहीं था। कई बार तो विपक्ष के कुछ दलों के द्वारा ऐसे व्यवहार टिप्पणियां करते हुए देखी गई जिससे राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्रीय एकता जैसे गंभीर विषयों की अनदेखी करते हुए भी दिखाई दिए। इसलिए जनता के सरोकारों से विपक्ष मजबूती से जुड़ने में असफल रहा। इसलिए यह कहा जा सकता है की आजादी के बाद अभी तक देश में एक मजबूत सशक्त राष्ट्रीय और विकास के सरोकारों से युक्त विपक्ष नहीं दिखाई दिया है खास तौर से यह बात गठबंधन के दौर में और निश्चित रूप से कही जा सकती है क्योंकि वर्तमान समय में यह स्पष्ट है कि किसी एक दल का प्रभुत्व भारतीय राजनीति में नहीं कहा जा सकता है। यदि पिछले दो आम चुनाव में भारतीय जनता पार्टी राजनीतिक दल के रूप में बहुमत प्राप्त किया है लेकिन गठबंधन की सरकार बनाने का कार्य की है क्योंकि चुनाव पूर्व का गठबंधन पूरी लोकतांत्रिक प्रक्रिया में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

#### 2.5.4 दलीय प्रणाली निर्माण की प्रक्रिया में

अभी ऊपर के अध्ययन में हमने देखा है कि भारत में अभी दलीय प्रणाली निर्माण की प्रक्रिया में है क्योंकि स्वतंत्रता के पूर्व जो कांग्रेस आजादी की लड़ाई के एक मंच था वह प्रथम आम चुनाव 1952 से एक राजनीतिक दल के रूप में सत्ता संघर्ष की प्रक्रिया में शामिल होता है। जिसमें कई दल उसके अंदर भी है और अन्य दल भी उसके विरोधी दल के रूप में भी चुनाव लड़ कर के सामने आते हैं, क्योंकि कांग्रेस के साथ जनता की भावनाएं जुड़ी हुई थी क्योंकि स्वतंत्रता आंदोलन में कांग्रेस का इतिहास था अपना योगदान था लेकिन धीरे-धीरे स्वतंत्रता के पश्चात जनता की आकांक्षा और

अपेक्षाओं में उस हद तक पूर्ति ना होना जो अपेक्षित थी, ऐसे में क्षेत्रीय स्तर पर बहुत से दलों का भाषा धर्म क्षेत्र आदि के आधार पर विकास हुआ। जिसने सर्वप्रथम राज्य के स्तर पर गठबंधन की सरकार के निर्माण का कार्य किया जिसे 1967 के राज्यों के विधानसभा के चुनाव में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है आगे 1977 1989 1991 1996 1998 1999 2004 2009 2014 और 2019 में गठबंधन की सरकार बनती हुई दिखाई देती है |जिसमें दिखाई देता है कि समय के सापेक्ष कांग्रेसका, जिसने लंबे समय तक सत्ता में प्रत्यक्ष रूप से नेतृत्व किया और कुछ समय गठबंधन के आधार पर सरकार चलाया तथा बाहर से भी समर्थन देकर कि सरकार बनाने का कार्य किया |वह कांग्रेस राजनीतिक चुनाव में काफी पीछे दिखाई देती है सफलता के मामले में |परंतु नई राजनीतिक शक्ति के रूप में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन का उद्भव होता है |स्वतंत्रता के बाद बनने वाली राजनीतिक पार्टियों में प्रमुख थी जिसने राष्ट्रीय एकीकरण और राष्ट्रीय सुरक्षा तथा विकास और सांस्कृतिक अस्मिता को लेकर के आगे बढ़ने का कार्य किया | जिसे जनता के समर्थन से वर्तमान समय में राजनीतिक सफलता प्राप्त हुई इस प्रकार से दिखाई देता है कि देश में जहां राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दल दिखाई देते हैं जिनमें से कुछ राष्ट्रीय और क्षेत्रीय आकांक्षाओं के द्रंद जीते हुए दिखाई दे रहा है तो कुछ राष्ट्रीय आकांक्षाओं और एकीकरण को प्राथमिकता के आधार पर आगे बढ़ने का कार्य कर रहे हैं |साथ ही क्षेत्रीय आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए भाषा धर्म और क्षेत्र के आधार पर राजनीतिक दलों का उदय हो रहा है |समय-समय पर इन राजनीतिक दलों की एक विशेषता यह भी है कि यह व्यक्ति आधारित और परिवार आधारित राजनीतिक दल के रूप में दिखाई देते हैं इसलिए उनकी कार्यशैली में क्षेत्रीय आकांक्षाओं को संतुष्ट करने की प्रवृत्ति भी कम ही दिखाई देती है |राजनीतिक सफलता और व्यक्तिगत उपलब्धियों की प्राथमिकता अधिक दिखाई देती है | फिर भी कहा जा सकता है कि भारत में लोकतंत्र बहुत ही मजबूत स्थिति में आगे बढ़ रहा है परंतु यहां पर दलीय प्रणाली अभी विकास की और निर्माण की स्थिति में है

### 2.5.5 राजनीतिक अस्थिरता

क्योंकि हमने ऊपर के अध्ययन में देखा की 1967 में राज्यों के चुनाव में कई राज्य में गठबंधन की सरकार बनी तथा 1977 , 1989 ,1991, 1996 और अभी तक 2019 तक गठबंधन की सरकार बन रही है। 1999 से अभी तक जो गठबंधन की सरकारें हैं उन्होंने काफी हद तक राष्ट्रीय स्तर की सरकार में स्थिरता प्रदान करने का कार्य किया है परंतु गठबंधन की सरकार होने के कारण कई बार मजबूत फैसले लेने से पीछे रह गये |वर्तमान समय में 2014 और 2019 के चुनाव में जो गठबंधन सरकार है उसकी प्रकृति में परिवर्तन है क्योंकि उसकी प्रवृत्ति भिन्न है क्योंकि गठबंधन की सरकार होने के साथ उसमें एक पार्टी का स्वयं में बहुमत भी है |इसलिए मजबूत और कड़े फैसले देश के हित में लिए जाने आसान है |शायद इसीलिए राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में अनुच्छेद 370 की समाप्ति

और राष्ट्रीय एकीकरण के साथ सामाजिक एकीकरण और न्याय की दिशा में 35A जैसे प्रावधानों को समाप्त कर बहुत बड़े कार्य किया गया | क्योंकि क्षेत्रीय दल जो इस गठबंधन में है वह उस तरह की सौदेबाजी करने की स्थिति में नहीं है जिस प्रकार की सौदेबाजी उस समय होते थे, जब सरकार में गठबंधन सरकार में सबसे बड़ी पार्टी को बहुमत की स्थिति ना हो।

अभ्यास प्रश्न

१. भारत में निम्नलिखित में से कौन सी शासन प्रणाली अपनाई गई है ?

A.संसदीय B.अध्यक्षीय C. दोनों D.इनमें से कोई नहीं

२.भारत में राष्ट्रपति संसद के अंग है | सत्य/ असत्य

## 2.6 सारांश-

उपरोक्त अध्ययन में यह पाया है की भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है | इसके संचालन में राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण स्थान है | क्यों की इस शासन प्रणाली में निश्चित अवधि पर जनता अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करती है | इस निर्वाचन की प्रक्रिया में जनता के विकल्प के रूप में राजनीतिक दल अपने नीतियों और कार्यक्रमों को लेकर आते हैं इसी के आधार पर जनता अलग अलग राजनीतिक दलों को उनके नीतियों और कार्यक्रमों के आधार पर पर समर्थन करते हुए मतदान करते है |

इस आधार पर भारत में निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल को सरकार बनाने का संवैधानिक अधिकार प्राप्त है | भारत में स्वतंत्रता के पूर्व और स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक दलों के उद्भव और उनके विकास का अध्ययन इस इकाई में किया है जिसमें यह पाया है की स्वतंत्रतापूर्व भारत में कांग्रेस एक मंच था, जिसमें मतभेदों के बाद भी एक सामान्य उद्देश के लिए सभी साथ थे | वह सामान्य उद्देश था स्वतंत्रता की प्राप्ति | परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात कांग्रेस सत्ता प्राप्ति की प्रक्रिया में हिस्सा लेने वाला राजनीतिक दल के रूप में आगे आया है | साथ ही अन्य दलों का भी उद्भव हुआ, जिसमें जनसंघ प्रमुख है | जिसके अपने उद्भव के समय से ही सामाजिक और राष्ट्रीय सरोकार से युक्त राष्ट्रीय एकीकरण जैसी प्राथमिकताएं रही | इस दो मुख्य राजनीतिक दलों ने देश की दलीय पद्धति के विकास और निर्माण में अपने अपने योगदान दिए हैं | यहाँ उल्लेखनीय है है अध्ययन में यह बात भी आई की स्वतंत्रता के बाद 1967 तह राष्ट्रीय आन्दोलन के मंच के रूप में कार्य करने के कारण कान्ग्रेस के साथ जनसामान्य जुड़ा रहा | परन्तु धीरे धीरे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की प्राथमिकताओं की सिद्धी में उतनी सफलता नहीं मिली जितनी जन अपेक्षित थी | अतः 1967 में पहली बार 8 राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ | यदपि बाद के अनुभवों में यह पाया गया की ये या इस प्रकार की दूसरी सरकार अपना सफल आयोजन नहीं कर सकी | परन्तु राष्ट्रीय राजनीति में वर्तमान रूझान बदल रहे है | बहुदलीय राजनीतिक दलों के स्थान पर गठबंधन आधारित द्विध्रुवीय दलीय



प्रणाली की तरफ देश बढ़ रहा है। साथ ही पिछले दो आम चुनाव में गठबंधन सरकार के संगठन और प्रकृति में बदलाव दिखाई देता है। वह यह की दोनों बार गठबंधन में एक राजनीतिक दल को बहुमत भी हैं। ऐसी स्थिति राष्ट्रीय सरोकारों से युक्त मजबूत फैसले लते हुए सरकार दिखाई दी है। इस आधार पर कह सकते हैं की भारत में विकसित हो रही दलीय प्रणाली जिसमें गठबंधन सरकार का बनना विविधता को साकार कर रहा है, तो यह कमजोरी न बन जाए इसके निराकरण के लिए जनता ने उसी गठबंधन में एक राजनीतिक दल को बहुमत देकर राष्ट्रीय और सामाजिक सरोकारों से युक्त मजबूत फैसले लेने की सामर्थ्य भी सरकार को दिया है। निश्चित रूप से यह विविधतायुक्त किसी राष्ट्र के लिए अनुकरणीय और स्वयं भारत के लोकतंत्र के लिए शुभता की तरफ बढ़ते हुए कदम के रूप में देखा जाना चाहिए।

### 2.7 शब्दावली

प्रतिनिधि शासन –ऐसी शासन प्रणाली जिसमें शासन के संचालन की जिम्मेदारी जनता के प्रतिनिधियों के पास होती है।

संसद –भारत में संसद राष्ट्रपति, राज्यसभा और लोकसभा से मिलकर बनती है। जिसका उल्लेख भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 में किया गया है।

### 2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. A, २. सत्य

### 2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत का संविधान-दुर्गादास बसु
2. राजनीति चिंतन की रूपरेख -ओ.पी.गाबा
3. संपादक-राजकिशोर -भारत का राजनीतिक संकट
4. सुभाष कश्यप-हमारी संसद
5. सुभाष कश्यप-हमारा संविधान

### 2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बालमुकुन्द अग्रवाल-हमारी न्यायपालिका
2. एस.एम.सईद-भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

### 2.11 निबंधात्मक प्रश्न

१. भारत में दलीय प्रणाली की मुख्य विशेषताओं की विवेचना कीजिये।





---

## **इकाई-3 : दल-बदल की राजनीति**

---

इकाई की रूपरेखा

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 राजनीतिक दल-बदल का अर्थ, प्रकृति, प्रकार व प्रेरणाश्रोत
- 3.4 भारत में दल-बदल की राजनीति
  - 3.4.1 1973 व 1978 के दल बदल विरोधी विधेयक
  - 3.4.2 1985 का दलबदल रोक अधिनियम
  - 3.4.3 1985 का दलबदल रोक अधिनियम की आलोचना
- 3.6 सुधार सम्बन्धी सुझाव
- 3.7 सारांश
  - 3.8 शब्दावली
  - 3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
  - 3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
  - 3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
  - 3.12 निबंधात्मक प्रश्न

### 3.1 प्रस्तावना

वास्तव में दल-बदल विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक जटिलताओं की उपज है। जिसके अंतर्गत हम कार्य करते हैं तथा इसे एक दुष्कर सामाजिक वास्तविकता के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इसकी स्तुति एवं निन्दा से कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। हम किसी अन्य स्थान से सहायता नहीं माँग सकते, या ऐसे निश्चित सिद्धान्तों व सूत्रों के संदर्भ में सोचना भी गलत होगा जो विभिन्न स्थानों या समयों पर सार्थक हुए होंगे। इस सर्व-व्यापक दल-बदल और प्रति दलबदल के सही कारण ऐतिहासिक, संस्थागत व प्रयोजनात्मक एवं कभी-कभी इन तीनों का समिश्रण है।

#### -सुभाष कश्यप

लोकतांत्रिक सरकार के संचालन के लिये राजनीतिक दल अपरिहार्य होते हैं। वे राजनीतिक व्यवस्था में हित-स्वरूपीकरण और हित-एकीकरण का प्रमुख कार्य करते हैं। राजनीतिक दल जनता को राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी के लिये प्रोत्साहित करते हैं। व्यापक मताधिकार के युग में वे जनता के निकट संबंध स्थापित करते हैं। वे चुनाव लड़ते हैं और राजनीतिक दलों के सदस्य विजयी हो कर सरकार का गठन करते हैं। सत्ता प्राप्त करने के लिये प्रत्येक राजनीतिक दल व उसके सदस्य पूरी ताकत लगाते हैं। इधर के कुछ वर्षों में राजनीतिक दलों के सदस्यों में पद, सत्ता पाने के लिये अपने दलों से अलग हो कर दूसरे दलों में जा कर पद व सत्ता का लाभ लेने की प्रवृत्ति भी प्रबल हुई है। इसे दल-बदल की राजनीति का नाम दिया गया है। सत्ता प्राप्त करने, सरकार गठित करने के लिये राजनीतिक दल व दलों के सदस्य मौका मिलने पर इसका भरपूर लाभ ले रहे हैं।

दल-बदल आज भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का प्रमुख लक्षण बनता जा रहा है। इस प्रथा का आरंभ स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद के वर्षों में ही देखने को मिलता है। लेकिन चतुर्थ आम चुनाव के बाद यह प्रथा बहुत अधिक प्रचलन में आ गयी। चौथे आम चुनाव में कांग्रेस की लोकप्रियता कम हो जाने के कारण बहुत से कांग्रेसी सदस्यों ने खुल्लेआम कांग्रेस को छोड़ दिया। पदों को पाने के लिये सौदेबाजी शुरू कर दी और सत्ता में लाभ के पद में बने रहने के लिये दूसरे दल की सदस्यता ले ली और दूसरे दल में लाभ के कारण शामिल हो गये। हरियाणा जैसे प्रान्त में दल के सदस्यों ने इतनी जल्दी-जल्दी अपनी प्रतिष्ठाएं बदली प्रारंभ की कि वहाँ स्थिर सरकार को चलाना असंभव हो गया। दल-बदल के कारण राजनीति में आ रही अस्थिरता के चलते सभी राजनीतिक दल चिन्तित हुए और राजनीतिक दलों ने इस पर नियंत्रण लगाने के प्रयास किये। सभी दल इस मुद्दे पर एक मंच पर आये लेकिन कोई सहमति नहीं बन पायी। अंततः 1985 में संविधान में 52वां संशोधन कर दल-बदल पर रोक लगायी गयी। यद्यपि आज दल-बदल निषेध अधिनियम लागू है लेकिन प्रकारान्तर से यह प्रथा अभी भी जारी है।

### 3.2 उद्देश्य

पिछली इकाई में हमने भारत में दलीय व्यवस्था को जाना। इस इकाई में हम भारत में दलीय व्यवस्था में के अन्तर्गत व्याप्त दल-बदल की राजनीति को समझेगें। इस इकाई के द्वारा हम जान पायेंगे कि-

1. दल बदल कानून क्या है।
2. भारत में दल-बदल की राजनीति का प्रवेश कब से हुआ।
3. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में यह एक कुरीति क्यों है।
4. भारत में दल-बदल की राजनीति पर अंकुश लगाने के लिये क्या प्रयास किये गये।  
भारतीय राजनीतिक व्यवस्था दल बदल के कारण होने वाली हानि व लाभा
5. इस इकाई में हम यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि दल परिवर्तन के कारण क्या
6. हैं।

### 3.3 राजनीतिक दल-बदल का अर्थ, प्रकृति, प्रकार व प्रेरणाश्रोत

1967 के चतुर्थ आम निर्वाचन के अप्रत्याशित परिणामों ने भारत के राजनीतिक विकास में एक ऐतिहासिक दौर की शुरुआत की जिसे कई नामों से पुकारा गया। जैसे- अस्थिरता की राजनीति, विभ्रम की राजनीति, बचाव की राजनीति, संक्रमण की राजनीति और सामान्य रूप से इसे दल-बदल की राजनीति के नाम से जाना गया। मुख्यतः दल-बदल की अवधारणा राजनीतिक सत्ता के लिये सिद्धान्तहीन होड़ के रूप में सामने आयी। दल-बदल का सहज अर्थ अपने दायित्वों को त्यागना या उससे मुकरना है। किन्तु राजनीति में विविध स्थितियों में इसके विविध रूप होते हैं। जैसे- दल का बदलना, दल के प्रति वफादारी में बदलाव होना, जिस दल के अधीन चुनाव लड़े उस दल का त्याग, सदन के भीतर पाला बदलना, किसी दूसरे दल में शामिल होने के लिये अपने दल को छोड़ना फिर एक निर्दलीय की तरह रहना या एक नया दल या गुट बनाना, कोई दल बनाना और फिर उसी में शामिल होना आदि। यानि अपना रूख बदलते रहना ही दल-बदल है। हालांकि अभी तक दल-बदल की सार्वभौमिक और सर्वस्वीकृत परिभाषा नहीं बन पायी है। किन्तु सुभाष कश्यप की परिभाषा बहुत मात्रा में इस अवधारणा का प्रतिनिधित्व करती है। उनके अनुसार- दलबदल का मतलब राजनीतिक प्रतीक का बदलना है, जिसमें निम्न मामलें शामिल माने जाने चाहिए जैसे-

1. एक दल के टिकट पर विधायक का चुना जाना और फिर उस विशेष दल को छोड़ कर अन्य दल में चला जाना।
2. दल से त्याग पत्र देकर अपने को निर्दलीय घोषित कर देना।
3. एक निर्दलीय के रूप में चुनाव जीत कर किसी विशेष दल में शामिल हो जाना। यदि कोई विधायक किसी मूल मामले में दल से त्यागपत्र दिये बिना अपने दल के विपरीत मत देता है तो उसे किसी भी रूप में दल बदल से कम नहीं माना जाना चाहिए।

सुभाष कश्यप की इस परिभाषा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजनीतिक दल बदल निम्न कारणों से हो सकता है जैसे-

- एक दल को छोड़ कर दूसरे दल में शामिल होना।
- एक दल को छोड़ना दूसरे को अपनाना और फिर अपने मूल दल में आ जाना।
- अपने दल को छोड़ कर निर्दलीय बन जाना।
- दल छोड़ देना परन्तु एक उदार नेता की तरह उसका समर्थन करते रहना।
- अन्य दल बनाने के लिये दल त्यागना।
- दल छोड़ कर दूसरे दल की स्थापना करना तथा फिर उसे मूल दल में मिला देना या किसी अन्य दल में विलय करना।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि दल बदल की प्रक्रिया उसी समय प्रारम्भ हो जाती है जब कोई व्यक्ति चाहे किसी भी उद्देश्यसे अपनी राजनीतिक निष्ठा बदलता है।

### 3.4 भारत में दल-बदल की राजनीति

राजनीतिक अर्थों में दल-बदल को अर्थ किसी व्यक्ति का उस राजनीतिक दल को जिसके टिकट पर वह निर्वाचित हुआ है, छोड़कर किसी अन्य दल में सम्मिलित हो जाना है। दल विच्छेद की इस प्रक्रिया को 'फ्लोर क्रासिंग' भी कहा जाता है। फ्लोर क्रासिंग शब्द इंग्लैंड से निकल कर आया है। इंग्लैंड में विरोधी दल व सत्ताधारी दल एक दूसरे के आमने-सामने बैठते हैं और यदि उनमें से किसी दल का सदस्य एक तरफ से दूसरी तरफ जाता है तो उसे बीच के रास्ते को पार करके जाना होता है। इस प्रक्रिया को वहाँ फ्लोर क्रासिंग कहा जाता है। भारत में दल परिवर्तन या दलबदल का स्वरूप इंग्लैंड की तरह न होकर थोड़ा भिन्न है। भारत में दल परिवर्तन की प्रवृत्ति केवल विरोधी दल से सत्तारूढ़ दल व सत्तारूढ़ दल से विरोधी दलों के बीच ही नहीं है, बल्कि स्वयं विरोधी दलों या सत्तापक्ष के दलों के अन्तर्गत सदस्य एक दल से दूसरे दल में मिलते व प्रथक होते रहते हैं। इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसे परिवर्तनों का उद्देश्यसैद्धान्तिक मतभेद न हो कर राजनीतिक स्वार्थ होता है। भारत में दल परिवर्तन के मामले 1967 से मिलते हैं लेकिन 1967 के आम चुनावों के बाद दल परिवर्तन इतनी तेजी से होना शुरू हुआ कि इसने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में गंभीर समस्या पैदा कर दी। चौथे आम चुनाव के बाद कांग्रेस दल के एकाधिकार का लगभग-लगभग अंत हो गया। इस समय जिन 16 राज्यों में चुनाव हुए आठ में कांग्रेस पार्टी पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं कर सकी। ये राज्य बिहार, केरल, तमिलनाडु, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश व पश्चिम बंगाल थे। इनमें से छः राज्यों में विरोधी दलों ने न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर संयुक्त हो कर सरकार का गठन किया। कुछ राज्यों में कांग्रेस को सीमान्त बहुमत मिला और येन केन प्रकारेण कांग्रेस ने मंत्रिमंडल का निर्माण

किया। ऐसे राज्यों में विरोधी दलों ने सामूहिक प्रयत्न कर कांग्रेसी सरकारों को अपदस्थ करने का अभियान चलाया। चुनावों के तुरन्त बाद उत्तर-प्रदेश, हरियाणा व मध्यप्रदेश में कांग्रेस दल न मंत्रीमण्डल का निर्माण किया। अगले कुछ महिनों बाद कांग्रेस के भीतर तोड़-फोड़ के फलस्वरूप कांग्रेस के मंत्रीमण्डल के स्थान पर विरोधी दलों की मिश्रित सरकारों का गठन हुआ। प्रारम्भिक तौर पर सभी विरोधी दल समझौते के तहतसरकार बनाने को तैयार हुए, इसके पीछे उनका सीधा उद्देश्ययह था कि कांग्रेस को किसी भी हाल में सरकार बनाने का मौका न दिया जाय। और जिन राज्यों में कांग्रेस की सरकारों का निर्माण हो गया उन्हें गिराया जाये। इन सब उद्देश्यों की पूर्ती के लिये दलबदल को साधन के रूप में अपनाया गया। जिसके परिणामस्वरूप एक ऐसी स्थिति आयी जब देश के 17 राज्यों में से 9 राज्यों में गैर-कांग्रेसी-मिश्रित सरकारों का निर्माण हुआ। यह भारतीय राजनीति का सबसे एतिहासिक परिवर्तन था। दूसरी ओर ये भी कहा जा सकता हैकि भारत में दल बदल की प्रक्रिया का उद्भव भारत की विशाल राजनीतिक पार्टी कांग्रेस के पतन से ही तीव्र हुआ। उसके उत्थान व पतन से राजनीतिक दल बदल के बाजार में उतार चढ़ाव आते रहे। भारी संख्या में राजनीतिक व्यक्तियों द्वारा राजनीतिक प्रतिबद्धता के बदलते रहने के कारण देश की राजनीति में अस्थिरता आने लगी। विशेषज्ञों ने इसके कई कारण बताये-

1. भारत में राजनीतिक दलों, विशेषकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास व उसकी प्रकृति।
2. सभी दलों में वृद्ध लोगों का नेतृत्व ।
3. राजनीतिक दलों में सैद्धान्तिक ध्रुवीकरण का अभाव।
4. दलों की सदस्यता, उनके लक्ष्यों व गतिविधियों में जन-भागीदारी का अभाव तथा चुने हुए प्रतिनिधियों की दलबदल संबंधी गतिविधियों के प्रति जन उपेक्षा।
5. दलों के अन्तर्कलह व उनमें गुटबंदी।
6. राज्य विधान सभाओं में अस्थायी या कम बहुमत वाली सरकारें तथा निर्दलीय सदस्यों की भूमिका।
7. साधारण विधायक व दल के स्वामी के मध्य व्यक्तित्व का टकराव।
8. पद, धन, स्तर आदि का लालच या उसका अभाव।
9. मंत्री व विधायक के वेतन, भत्ते, स्तर व अन्य उपलब्धियों में भारी अन्तर।
10. राजनीतिक दलों में शक्तिशाली दबाव समूहों व धड़ों की भूमिका।



11. 1967-69 के मध्य कांग्रेस दल द्वारा सत्ता में अन्वियों की भागीदारी न बनाने की प्रवृत्ति।

12. भारतीय राजनीति में व्याप्त ढोंग, गरीबी व अज्ञानता से भरे देश में झूठे विचारों व राजनीतिक वास्तविकताओं के बीच बड़ी खाई।

इन सभी कारणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक दलबदल में व्यक्तिगत लाभ की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। राजनीतिक प्रतिबद्धता बदलने का प्रमुख कारण केवल स्वार्थ है। इसके अलावा कुछ भी नहीं। अतः दलबदल करने वाला व्यक्ति राजनीतिक अपराधी है जिसे जनता का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार नहीं है। 1971 में गवर्नरों की कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा- बहुत संख्या में दल बदल होने का कारण यह है कि इससे पुरस्कारोंपदों या राजकीय पक्षपात के आश्वासन मिलते हैं। यही वह परिस्थिति है जो अनुशासनहीनता व राजनीतिक भ्रष्टाचार को प्रत्यक्षतः उकसाती है।

### 3.4.1 1973 व 1978 के दल बदल विरोधी विधेयक

चतुर्थ आम चुनावों के बाद की घटनाओं के संदर्भ में, भारत में राजनीतिक दल बदल की समस्या ने गंभीर रूप ग्रहण कर लिया। इस चुनाव के बाद कुछ ही महीनों में 438 विधायकों ने अपना दल बदला। 210 दलबलूओं में से 116 को मंत्रीमण्डल में स्थान मिला। 1967 से 1973 के बीच 2,700 विधायकों ने दलबदल कर 45 राज्य सरकारों को गिराया। उस समय देश के 60 प्रतिशत से अधिक विधायकों ने दलबदल में भाग लिया। जिस कारण जून 1967 में शिमला में हुए सचेतक अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित हुआ। जिसमें कहा गया कि- सम्मेलन सम्पूर्ण देश में व्याप्त दलबदल की घटनाओं व उनसे उत्पन्न स्थिति पर गंभीर चिन्ता व्यक्त करता है। सम्मेलन इसे नैतिक दृष्टि से अनुचित समझता है तथा इस अनैतिक कार्य को दुबारा चुनाव लड़कर दलबदलुओं ने भी मान्यता दी है।

सभी दलों से यह अपेक्षा की गयी कि वे इसकी गंभीरता को समझे व एक सर्वसम्मत संहिता बनायें जो सभी को स्वीकार्य हो एवं नैतिक रूप से उन्हें वाध्य करे। तदोपरान्त 8 दिसम्बर 1967 को लोक सभा में एक उच्च स्तरीय समिति बनाने का प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि व संवैधानिक विशेषज्ञ रखे गये जो दलबदल पर विचार कर संबंधित सुधारों के सुझाव देंगे। इस प्रस्ताव के अनुसार तत्कालीन गृह मंत्री यशवंत राव चव्हाण की अध्यक्षता में प्रसिद्ध न्यायविदों, राजनेताओं व सार्वजनिक नेताओं सहित एक समिति का गठन किया गया। इस समिति के पास सबसे मुस्किल कार्य दलबदल की सर्वसम्मत परिभाषा करना था। बड़ी मशक्कत के बाद समिति के एक सदस्य जय प्रकाश नारायण द्वारा दी गयी परिभाषा पर सहमति बनी। जिसमें कहा गया था कि- यदि संसद या राज्य विधान मण्डलों का कोई निर्वाचित सदस्य जिसे किसी राजनीतिक दल का चुनाव चिन्ह मिलता है, चुने जाने के बाद अपना दल स्वेच्छा से त्याग करता है, या उससे संबंध

तोड़ता है तो उसे दल बदल माना जायेगा बशर्ते उसका यह कार्य सम्बन्धित दल के किसी निर्णय का परिणाम न हो।

ये बात पहले ही कही जा चुकी है कि ऊपर दी गयी परिभाषा बड़ी मशक्कत के बाद सामने आयी और सभी द्वारा स्वीकार की गयी। लेकिन धीरे-धीरे इस परिभाषा को लेकर भी गतिरोध बढ़ने लगा। ये परिभाषा भी सभी को मान्य न हो सकी क्योंकि-

प्रथम-इसमें केवल निर्वाचित विधायकों से सम्बन्धित राजनीतिक दल बदल को लिया गया था। राजनीतिक दल के सदस्य जो संसद या राज्यों के विधान मण्डलों में नहीं हैं इस परिभाषा के दायरे में नहीं आ सके। द्वितीय-इस परिभाषा में ऐसा विधायक का दल बदल नहीं माना गया जिसे उसके दल ने किसी कारण निष्कासित कर दिया हो व तदोपरान्त उसने किसी अन्य दल की सदस्यता ग्रहण कर ली है। इससे दल बदल की आकांक्षा करने वाला सदस्य जान बूझ कर अपने दल का अनुषासन तोड़ सकता था जिससे वह दल से निकाला जाये व उसका वांछित लक्ष्य पूरा हो सके। तृतीय- इस परिभाषा में ऐसी स्थिति में प्रकाश नहीं डाला गया जिसमें पूरा दल या गुट किसी अन्य दल या गुट में विलय कर ले। चतुर्थ-इसमें वह विधायक भी शामिल नहीं किया गया जो जानबूझ कर संसद में अनुपस्थित रह कर मतदान में भाग नहीं लेता। पंचम-इसमें उन निर्दलीय व्यक्तियों के बारे में कुछ नहीं कहा गया जो राजनीतिक हवा के अनुसार अपना रूख बदल लेते हैं। अतः यह कहा जा सकता था कि इस सरकारी व्याख्या में इतनी खामिया थीं कि इससे वांछित विधायक का उद्देश्यकी समाप्त हो गया।

कुछ संशोधनों सहित सरकार ने च्वहाण समिति के सुझावों को क्रियान्वित करने के लिये 16 मई 1973 को लोकसभा में राजनीतिक दलबदल विरोधी विधेयक प्रस्तावित किया। इसमें प्रावधान किया गया कि विधायक को संसद के किसी सदन या विधान सभा व परिषद के सदस्य बने रहने के अयोग्य घोषित किया जा सकेगा यदि वह-

- दल के उम्मीदवार के रूप में किसी सदन का सदस्य चुने जाने के बाद या उस दल के सदस्य होने के बाद उस दल की सदस्यता त्याग देता है।
- यदि कोई सदस्य पूर्व अनुमति के बिना सदन से अनुपस्थित रहता है या अपने राजनीतिक दल व उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति के आदेशों के विरुद्ध मत देता है।

विधेयक में आगे यह भी कहा गया था कि उपरोक्त शर्तें वहाँ लागू होंगी जहाँ विधेयक को दल में फूट पड़ जाने के कारण दल की सदस्यता से त्याग पत्र देना पड़े। उसमें यह भी प्रावधान किया गया था कि ऐसा कोई विवाद जो सम्बन्धित दल या व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जायेगा अंतिम रूप से राज्य के मामले में राज्यपाल तथा केन्द्र के मामले में राष्ट्रपति द्वारा निर्णित होगा।

इस दलबदल विरोधी विधेयक में कई कमियाँ थीं। प्रथम- यह विधेयक दलबदल की स्पष्ट परिभाषा करने में असफल था। द्वितीय- इस विधेयक द्वारा सम्बन्धित दल को राज्य के अध्यक्ष से प्रार्थना करने का अधिकार दिया गया। पर यदि कोई पीड़ित पक्ष राष्ट्रपति या राज्यपाल जिसका सम्बन्ध हो के पास न जाये तो क्या वह राजनीतिक दलबदल नहीं होगा? तृतीय- फूट पड़ जाने की परिस्थिति में दलबदल की सम्भावना को ही दूर कर दिया गया गया। चतुर्थ- केन्द्र पर राष्ट्रपति व राज्यों में राज्यपालों को इस सम्बन्ध में विस्तृत अधिकार दे कर उन्हें दलीय राजनीति में अनुचित रूप से घसीटा गया। पंचम- इस विधेयक से सदन के सदस्य की अपने मतदान के संदर्भ में स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाया गया और इस तरह संविधान के तृतीय भाग में वर्णित मौलिक अधिकारों का ही उलंघन किया गया। कुल मिला कर इस विधेयक का भी विरोध किया गया।

अपने चुनाव घोषणापत्र में किये गये महत्वपूर्ण वायदों को क्रियान्वित करने के लिये जनता सरकार ने अप्रैल 1978 में एक विधेयक रखा जिसमें संविधान के अनुच्छेद 102 व 109 को परिवर्तित कर संसद व राज्य व्यवस्थापिकाओं के सदस्यों की योग्यताओं को पुनर्निर्धारित किया गया। इसमें कहा गया कि-किसी व्यक्ति को संसद या किसी सदन या राज्य व्यवस्थापिका के सदस्य बने रहने के अयोग्य माना जायेगा यदि (1) वह स्वेच्छा से अपनी मूल राजनीतिक दल की सदस्यता को त्याग दे। (2) वह सदन में अपने दल के आदेशों या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति के आदेशों की उपेक्षा पर उसकी पूर्व अनुमति के बिना दल के विरुद्ध मतदान करे। संसद के किसी सदन या राज्य व्यवस्थापिका के सदस्यता के लिये निर्वाचित सदस्य का वही दल माना जायेगा जिसके चुनाव चिन्ह पर वह जीत कर आया है। जीतने के बाद उसने सबसे पहले किसी दल की सदस्यता ग्रहण कर ली है। इस सम्बन्ध पर उठे किसी विवाद पर पीठासीन अधिकारी का निर्णय अंतिम होगा। इस निर्णय को न्यायपालिका में नहीं ले जाया जा सकता है। यद्यपि पीठासीन अधिकारी को अपने निर्णय देने के पूर्व जाँच करने का पूर्ण अधिकार होगा।

दुर्भाग्यवश जनता सरकार के सभी प्रयास व्यर्थ रहे क्योंकि 48वें संविधान संशोधन विधेयक को 28 अप्रैल 1978 को लोकसभा में प्रस्तुत करते ही जनता दल के कुछ वरिष्ठ सदस्यों ने इसका तीव्र विरोध किया। अतः इस विधेयक को वापस ले लिया गया।

### 3.4.2 1985 का दलबदल रोक अधिनियम

जून 1975 में आपातकाल लागू होने के बाद राजनीतिक दलबदल की बाढ़ सी आ गयी। अपने राजनीतिक संगठनों में अपना कोई भविष्य न देख कर भारतीय लोकदल, जनसंघ, संगठन कांग्रेस, समाजवादियों तथा अन्य क्षेत्रीय दलों के विधायकों में शामिल होने की होड़ लग गयी। किन्तु फरवरी 1977 में कांग्रेस से भारी निकासी की शुरुआत हुयी जब जगजीवन राम के नेतृत्व में प्रजातांत्रिक कांग्रेस की स्थापना हुयी। श्रीमती इन्दिरा गाँधी के अधिनायकवादी व स्वेच्छाचारी

वर्ताव से क्षुब्ध होकर कई प्रमुख कांग्रेसी नेताओं(हेमवतीनंदन बहुगुणा, के.आर.गणेश व नंदिनी सत्यपथी आदि) ने कांग्रेस छोड़कर कांग्रेस फार डेमोक्रेसी में शामिल होने का निर्णय किया। परिणामस्वरूप जगजीवन राम का यह व्यक्तिगत संगठन एक शक्ति के रूप में उभरा। इस दल की आलोचकों द्वारा तीखी टिप्पणी की गयी। इसे 'दलबदलुओं की कांग्रेस' कहने लगे। जनता पार्टी के पतन के साथ ही इस स्वार्थपरक व अवसरवादी दल का पतन हो गया। हरियाणा में 1982 में हरभजनलाल द्वारा सामूहिक दल बदल, 1984 में गुलशाह द्वारा कश्मीर में दलबदल के बाद सरकार का गठन, और 1984 में ही आन्ध्र प्रदेश में भास्कर राव द्वारा दलबदल के बाद सरकार का गठन भारतीय राजनीति के लिये अभिशाप सिद्ध हुआ।

यद्यपि पूर्व के सभी प्रयास असफल रहे, राजीव गाँधी की सरकार ने आठवीं लोकसभा के पहले ही सत्र में विपक्षी दलों का सहयोग लेकर दलबदल पर अंकुश लगाने का सराहनीय प्रयास किया। संसद के उद्घाटन भाषण में महामहीम राष्ट्रपति ने इसका कुछ संकेत दे दिया था। जनवरी 1985 में दोनों सदनों से पारित हो कर यह चर्चित विधेयक 52वें संविधान संशोधन अधिनियम के रूप में सामने आया। इसने भारतीय संविधान में 10वीं अधिसूची बढ़ायी। इसमें निम्न प्रावधान हैं -

1. निम्न परिस्थितियों में संसद या राज्य विधान मण्डल के सदस्य की सदस्यता समाप्त हो जायेगी।

क-यदि वह स्वेच्छा से अपने दल से त्याग पत्र दे दे।

ख-यदि वह अपने दल या उसके अधिकृत व्यक्ति की अनुमति के बिना सदन में उसके किसी निर्देश के प्रतिकूल मतदान करें या मतदान के समय अनुपस्थित रहे। परन्तु यदि 15 दिन के अन्दर उसका दल उसे इस उलंघन के लिये क्षमा कर दे तो उसकी सदस्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

ग-यदि कोई निर्दलीय निर्वाचित सदस्य 6 महिने के भीतर किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाये तो उसे दल बदल का अपराध नहीं माना जायेगा।

2. किसी राजनीतिक दल के विघटन पर विधायक की सदस्यता समाप्त नहीं होगी यदि मूल दल के एक तिहाई सांसद विधायक वह दल छोड़ दें।

3. किसी प्रकार विलय की स्थिति में भी दलबदल माना नहीं जायेगा यदि किसी दल के कम से कम दो तिहाई सदस्य किसी अन्य दल में मिल जाएं।

4. दल बदल के किसी प्रश्न पर अंतिम निर्णय सदन के अध्यक्ष का होगा। किसी न्यायालय को उसकी वैधता जाँचने का अधिकार नहीं होगा। इसे पंजाब व हरियाणा न्यायालय ने 1986 में रद्द कर दिया।

5. इस विधेयक को कार्यान्वित करने के लिये सदन के अध्यक्ष को नियम व निर्देश बनाने का अधिकार होगा।

इस दलबदल विरोधी कानून की हर जगह सराहना हुई। दोनों सदनों के सदस्यों ने इस 'ऐतिहासिक घटना' बताया। इससे देश के राजनीतिक जीवन में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। तत्कालीन केन्द्रीय कानून मंत्री अशोक सेन के अनुसार- संसद के दोनों सदनों के द्वारा सर्वसम्मती से इस विधेयक को स्वीकार करना भारतीय प्रजातंत्र की परिपक्वता व स्थिरता का प्रमाण है। इस अधिनियम के अनुसरण में संसद के पीठासीन अधिकारियों ने निम्न नियम बनाये हैं-

1. कोई सदस्य इस कानून के अन्तर्गत अयोग्य है या नहीं, इसका विचार संसद के किसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत याचिका के बाद ही किया जायेगा।
2. सदस्य या सदस्यों द्वारा प्रस्तुत ऐसी याचिका सदन के मुख्य सचिव को सम्बोधित होनी चाहिए तथा उससे सम्बन्धित साक्ष्य भी सन्निहित होने चाहिए।
3. पीठासीन अधिकारी याचिका स्वीकार करने के बाद उसे सम्बन्धित दल के नेता के पास अपनी टिप्पणी देने के लिये भेजेगा।
4. यदि पीठासीन अधिकारी याचिका को किसी समिति के सुपुर्द करता है तो प्रार्थी को उसकी विधिवत सूचना देगा व उसकी सार्वजनिक सूचना प्रकाशित करवायेगा।
5. पीठासीन अधिकारी दल के नेता व सम्बन्धित सदस्य के विचार जानने के बाद स्वयं निर्णय देगा या उसे सदन के विषेषाधिकार समिति को जाँच कराने के लिये सुपुर्द कर सकता है।
6. सम्बन्धित सांसद को अपनी सफाई देने के लिये उचित अवसर दिये बिना पीठासीन अधिकारी अन्तिम निर्णय नहीं लेगा।
7. याचिका पर विचार करने के तदोपरान्त, पीठासीन अधिकारी अपने लिखित आदेश से या तो याचिका खारिज कर देगा या सम्बन्धित सदस्य को अयोग्य घोषित कर देगा।
8. अयोग्यता सम्बन्धी निर्णय तुरन्त सदन को प्रेषित किया जायेगा। इसे सरकारी गजट में प्रकाशित किया जायेगा तथा इसकी प्रति सदन के महासचिव, चुनाव आयोग व भारत सरकार के गृह सचिव को प्रेषित की जायेगी।
9. प्रत्येक सदस्य को सदन में अपना आसन ग्रहण करने से पूर्व तीस दिन के भीतर सदन के महासचिव को अपनी निर्वाचन घोषणा व दलीय प्रतिबद्धता की सूचना देनी होगी।

10.संसद के दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारी भी इन नियमों से बाधित होंगे।

### 3.4.3 1985 का दलबदल रोक अधिनियम की आलोचना

- यह सही है कि दलबदल विरोधी अधिनियम हमारे राजनीतिक जीवन को स्वच्छ रखने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। परन्तु आलोचकों ने इसकी निम्न आधार पर आलोचना की है।
- इस अधिनियम से विधायक की अन्तर्आत्मा की स्वतंत्रता समाप्त होती है। असहमति रखने के अधिकार का हनन होता है। इससे दलीय घोषणा पत्र या संविधान की भावना के विपरीत रखे उपायों पर भी विधायक को मत देने के लिये विवश किया जा सकता है।
- हमारे संवैधानिक कानून में पहली बार राजनीतिक दलों का उल्लेख किया गया है। तथा दलों को अपने विधायकों को निष्कासित करने या सदन की सदस्यता समाप्त करने का पूर्ण अधिकार दिया गया है। जो घनघोर अन्याय हो सकता है।
- यदि दलबदल अनुचित हैं तो वह हर हालत में अनुचित है, किसी दल के विभाजन से उत्पन्न भारी संख्या में दलबदल कैसे उचित माना जा सकता है।
- यह राज्यों की स्वायत्ता नष्ट करने के बारे में केन्द्रीय प्रयास है। इसमें सन्देह हो सकता है कि क्या संसद किसी राज्य विधान सभा के सदस्य के अधिकारों व विशेषाधिकारों को नियमित करने में सक्षम है।
- किसी व्यक्ति को दलबदल के वर्ग में लाना और फिर उसके निष्कासन का मामला न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र में न रखना, घोर आपत्तिजनक व संविधान की व्याख्या करने के अधिकारी की अवमानना की भांति है।

### 3.6 सुधार सम्बन्धी सुझाव

1967 से 1985 के बीच तक के राजनीतिक दलबदल के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि इस राजनीतिक अपराध ने भीषण रूप ले लिया है। आज कठोर अधिनियमों के बाद भी दलबदल की प्रवृत्ति में किसी प्रकार की कोई कमी देखने में नहीं आयी है। आज भी दलबदल किसी न किसी रूप में हमें देखने को मिल रहा है। दलबदल की इस स्थिति के कारण हमारी संवैधानिक व्यवस्था के जीवन मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया है। देश के विशिष्ट राजनेताओं, वकीलों, शिक्षाविदों, राजनीतिक शास्त्रियों आदि ने भारतीय राजनीति में फैली इस बीमारी के उपचार हेतु निम्न सुझाव दिये। विद्वानों द्वारा दिये गये सुझावों में -प्रत्यावर्तन की व्यवस्था, अध्यक्षतात्मक प्रणाली को ग्रहण करना, दलहीन प्रजातंत्र की व्यवस्था, आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली या सूची प्रणाली के माध्यम

से चुनाव का होना, देश में प्रजातांत्रिक परम्पराओं के स्वस्थ विकास की योजना आदि को प्रमुख उपचार के रूप में महत्व दिया गया।

यदि इन सुझावों को मान लें तो कई राजनीतिक विद्वान ये मानते हैं कि कई अन्य परेषानियों का सामना करना पड़ सकता है। जैसे- विधेयक को वापस बुलाने या प्रत्यावर्तन की व्यवस्था से चुनाव की राजनीति में धूर्त चालों की बाढ़ आने की सम्भावना बढ़ जायेगी। दूसरी तरफ जनता भी इस नयी प्रजातांत्रिक पद्धति से ऊब जायेगी। दलहीन प्रजातंत्र केवल बौद्धिक विचार की वस्तु है। संसदात्मक शासन के स्थान पर अध्यक्षतात्मक शासन व्यवस्था को अपनाने से अनुत्तरदायी व स्वेच्छाचारी कार्यपालिका की स्थापना होगी जो उपचार से अधिक बड़ा रोग सिद्ध होगा। अनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अपने दोष हैं जिनका अनुभव फ्रांस व इटली वालों ने किये हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए एक ही व्यवहारिक सुझाव हो सकता है और वह है राजनीतिक लाभ रोकने हेतु किसी संवैधानिक प्रावधानों की व्यवस्था के साथ-साथ स्वच्छ प्रजातांत्रिक परम्पराओं का विकास। मंत्रिपरिषद के आकार पर प्रतिबंध, मंत्री की अवधि का निर्धारण तथा राजनीतिक दलबदलुओं की सदन की सदस्यता से समाप्ति ऐसे उपाय हैं जिनसे इस दशा में कुछ प्रतिरोध लगाया जा सकता है। परन्तु स्वस्थ प्रजातांत्रिक परम्पराओं के उदय व विकास के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। अतः जनता को स्वयं अपने सांसदों व विधायकों पर कड़ी निगाह रखनी होगी। विधायी व नैतिक विकल्पों का सुखद संयोजन ही इसका एक मात्र प्रभावी उपचार हो सकता है।

### 3.7 सारांश

दलबदल अधिनियम 1985 के पारित होने के समय यह आशा की गयी थी कि यह भारतीय राजनीति की एक गंभीर बीमारी की अचूक दवा साबित होगी, लेकिन बिगत 15 वर्षों के अनुभव दूसरी ही तस्वीर प्रस्तुत कर रहे हैं। अब इसकी अनेक खामिया नजर आने लगी हैं। इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व संसद या विधायक छुटपुट ढंग से दलबदल किया करते थे लेकिन इसके पारित होने के बाद सामुहिक रूप से बड़े पैमाने पर दल बदल होने लगा है। और छोटे-छोटे नये राजनीतिक दलों का तेजी से निर्माण होने लगा है। उदाहरण के लिये 90 के दशक में अनेक छोटे राजनीतिक दलों या गुटों का निर्माण हुआ है। जैसे- लोकतांत्रिक कांग्रेस, जनता दल(अ), जनतादल(ज), जनतांत्रिक बसपा, लोकशक्ति, लोक जनशक्ति इत्यादि।

बिगत 15 वर्षों में यह भी देखने को आया है कि अनेक सांसदों एवं विधायकों ने इस अधिनियम के प्रावधानों का उलंघन करते हुए दलबदल किया है लेकिन आज तक किसी की भी सदस्ता समाप्त नहीं हुयी। उदाहरण के लिये 1991 में अजीत सिंह के नेतृत्व में जनता दल के 10 सांसदों ने जनता दल से अलग होकर लोक सभा अध्यक्ष से नये राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्रदान करने का प्रतिवेदन दिया और अध्यक्ष शिवराज पाटिल ने उन्हें एक नये गुट के रूप में मान्यता प्रदान कर दी। जबकि उनकी संख्या पैतृक राजनीतिक दल की सदस्य संख्या से एक तिहाई कम थी। उत्तर-प्रदेश में कल्याण सिंह के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार ने अपनी सरकार को बचाये रखने के लिये अनेक राजनीतिक दलों से बड़े पैमाने पर दल बदल कराये और दलबदलुओं को मंत्री पद से नवाजा गया।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि दलबदल अधिनियम 1985 दलबदल को रोकने में असफल सिद्ध हो रहा है। अतः यह समीचीन होगा कि दलबदल अधिनियम में रहते आवश्यकसंशोधन कर इसे कारगर बनाया जाये, अन्यथा आने वाले दिनों में यह खतरनाक रूप धारण कर लेगा, और लोकतांत्रिक व्यवस्था अलोकतांत्रिकता की ओर मुड़ जायेगी। अंत में यह उल्लेखनीय है कि संविधान का 91वाँ संशोधन अधिनियम 2003 दलबदल पर कठोर नियमों को प्रतिस्थापित करता है।

### 3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभाष कश्यप - पालिटिक्स आफ डिफेक्षन
2. जे.सी. जौहरी - रिफ्लैक्शन आफ इंडियन पालिटिक्स
3. एस.एम.सईद - भारतीय राजनीतिक व्यवस्था
4. जे.सी.जौहरी - भारतीय शासन और राजनीति

### 3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

१ . समाचार पत्र व समाचार पत्रिकाएँ - इंडिया टुडे, आउटलुक, टाईम्स आफ इण्डिया, हिन्दुस्तान, द हिन्दु।

### 3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में दल बदल के इतिहास पर संक्षिप्त प्रकाश डालिये?
2. राजनीतिक दलबदल से आप क्या समझते हैं ?
3. दलबदल भारतीय राजनीति में एक अभिशाप है इस कथन पर अपने विचार लिखिये?
4. 1973 व 1978 के दलबदल अधिनियमों की असफलता पर अपने विचार दें?
5. 1985 के दलबदल अधिनियम के बाद से क्या आज की भारतीय राजनीति में कुछ सुधार आया है? अपना कथन दीजिये?



---

**इकाई 4 : मिश्रित सरकारें - गठन और कार्यचालन, संभावनाएं**

---

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 गठबंधन सरकार के बनने की परिस्थितियाँ
- 4.4 भारत में गठबंधन करने में मत भिन्नता को बहुत महत्व नहीं
- 4.5 गठबंधन सरकार की कार्यप्रणाली
- 4.6 परिवार की आकांक्षा और दलबदल आधारित गठबंधन
- 4.7 मिश्रित या गठबंधन सरकारों के असफलता के कारण
- 4.8 सारांश
- 4.9 शब्दावली
- 4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 4.13 निबंधात्मक प्रश्न



### 4.1 प्रस्तावना

विगत तीन दशकों से भारत में गठबंधन सरकार (मिश्रित सरकार) ही बन रही है। इसके पूर्व 1984 में कांग्रेस को बहुमत मिला। भारत में सर्वप्रथम 1977 में राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन सरकार बनी। इसके पश्चात 1989 बनी है। 1989 से अभी तक गठबंधन की सरकार बन रही है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि गठबंधन सरकार होती क्या है? इन का गठन किस प्रकार से होता है? यह किस प्रकार से कार्य करती हैं? तथा देश के आने वाले समय में गठबंधन की सरकार से क्या संभावनाएं हैं? इस बात का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। परंतु इसका अध्ययन करने के पूर्व हमें भारत में लागू की गई शासन प्रणाली के बारे में संक्षेप में समझना होगा जैसा कि पूर्व की कई इकाइयों में हमने देखा है कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है।

संसदीय शासन प्रणाली अपनाने के कारण ब्रिटेन की संसदीय परंपरा का अनुसरण करते हुए आम चुनाव के बाद निम्न सदन में अर्थात् लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल को, सरकार बनाने के लिए राष्ट्रपति आमंत्रित करते हैं। प्रधानमंत्री की नियुक्ति करते हैं। प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करते हैं। इस प्रकार से सरकार का गठन होता है लेकिन यह जितना आसान दिखाई दे रहा है सामान्यतया जब किसी राजनीतिक दल को बहुमत न प्राप्त हो तब सरकार के गठन को लेकर के अधिक चिंता होती है। तब ऐसी परिस्थिति में विभिन्न राजनीतिक दल संगठित होकर के सरकार बनाने का दावा राष्ट्रपति के पास पेश करते हैं। राष्ट्रपति को यह एहसास हो जाए कि यह बहुमत सिद्ध करने और सरकार चलाने में सफल होंगे तो विभिन्न राजनीतिक दलों में जिसको भी अपना नेता मानते हैं उसे प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करते हैं। यद्यपि इस प्रकार के गठबंधन की परिस्थितियां भिन्न भिन्न हो सकती हैं। यह हो सकता है कि कोई दल इस प्रकार के गठबंधन में शामिल होने के लिए सरकार में शामिल हो अर्थात् मंत्री पद को भी प्राप्त करें परंतु यह भी हो सकता है कि वह दल सरकार को बाहर समर्थन करें ताकि उसे बहुमत प्राप्त हो सके। जबकि सरकार का हिस्सा ना बने अर्थात् मंत्री पद को धारण न करें इस प्रकार से स्वतंत्रता के बाद दोनों परिस्थिति वाली सरकारें भारत में पाई गईं।

### 4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

1. गठबंधन सरकार के अर्थ को जान सकेंगे
2. इसके गठन की परिस्थितियों का अध्ययन कर सकेंगे
3. गठबंधन सरकार के कार्यचालन के अनुभव कैसा है यह जान सकेंगे
4. भारत में गठबंधन सरकार की उभरती प्रवृत्ति के बारे में जान सकेंगे

### 4.3 गठबंधन सरकार के बनने की परिस्थितियाँ

यहां यह उल्लेखनीय है कि जहां पर बहुदलीय व्यवस्था होती है वहां पर गठबंधन सरकार बनने की संभावना अधिक होती है, क्योंकि किसी भी राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त करने की स्थिति नहीं होती जबकि जहां पर मजबूत द्विदलीय व्यवस्था होती है वहां पर किसी न किसी राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त हो जाता है और वह आसानी से सरकार का गठन करते हैं।

जैसे ब्रिटेन में कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो वहां द्विदलीय व्यवस्था होने के कारण गठबंधन की सरकार अपवाद के रूप में ही दिखाई देती है। वहां पर सामान्यतया एक दल को बहुमत प्राप्त हो जाता है, रहा है और वह आसानी से सरकार बनाते हैं। लेकिन यह स्थिति फ्रांस के संदर्भ में नहीं कही जा सकती क्योंकि वहां पर पूर्व में अर्थात् पंचम गणतंत्र के लागू होने के पूर्व मिश्रित सरकारों के गठन और उनके विघटन का लंबा सिलसिला चला है इसीलिए फ्रांस को मिश्रित सरकारों का घर भी कहा जाता है।

अब यहां सवाल उठता है कि वह कौन से कारक है जिनकी वजह से भारत में गठबंधन सरकारों का दौर प्रारंभ होता है और वर्तमान समय तक दिखाई दे रहा है क्योंकि स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान कांग्रेस ऐसा मंच था जिसके साथ जुड़कर सभी जाति धर्म भाषा क्षेत्र के लोगों ने संघर्ष में हिस्सा लिया। स्वतंत्रता प्राप्ति का मंच था कांग्रेस। इसलिए भारत के जनसामान्य कांग्रेस से एक भावनात्मक लगाव रहा परंतु स्वतंत्रता के बाद यह कांग्रेस देश की आजादी का मंच होने के स्थान पर देश में सत्ता प्राप्ति के संघर्ष में शामिल होने वाले राजनीतिक दल के रूप में सामने आता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय लोगों का कांग्रेस के प्रति एक अलग लगाव था। इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ समय बाद तक कांग्रेस को एकतरफा बहुमत आम चुनाव में, राज्य के चुनाव में भी प्राप्त होता रहा है। परंतु जैसा कि हम सभी जानते भी हैं भारत में धर्म भाषा, क्षेत्र, संस्कृति, खान पान, रहन सहन, भौगोलिक संरचना में भिन्नता और इस संरचना में भिन्नता के साथ-साथ सामाजिक सांस्कृतिक भिन्नता और इनके साथ आवश्यकता जनित भिन्नता अर्थात् हितों में भिन्नता और इस भिन्नता के कारण देश के विभिन्न हिस्सों में छोटे-छोटे दलों का उदय हुआ।

देश में अभी तक राजनीतिक रूप से एक छत्र सफलता प्राप्त करने वाली कांग्रेस के सामने देश में पहली बार 1967 में चुनौती सामने आई क्योंकि 8 राज्यों की विधानसभाओं में किसी भी राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। इसका तात्पर्य है कांग्रेस को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। ऐसा पहली बार हुआ जिसमें 8 राज्यों में विभिन्न दलों के आपस में मिलने से सरकार का गठन होगा। जिसमें कांग्रेसी नहीं थी अर्थात् देश में पहली बार गैर कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ और वह भी 8 राज्यों में। यह गैर कांग्रेसी सरकार बहुमत किसी एक दल को बहुमत प्राप्त की सरकार ना हो करके कई दलों से मिलकर के गठित होने वाली सरकार थी जिसे गठबंधन की सरकार या मिश्रित सरकार

कहा जा सकता है | यह भी बहुत ही महत्वपूर्ण और विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि यह जो गठबंधन हुआ या गठबंधन किसी सिद्धांतों मूल्यों आदर्शों या उस प्रांत विशेष की आकांक्षाओं की तृप्ति के लिए न होकर के सत्ता प्राप्त करने के लिए होता हुआ अधिक दिखाई देता है |इसलिए इस प्रकार से होने वाले गठबंधन में बहुत तेजी से बिखराव भी दिखाई देता है |जैसा कि बाद के दिनों में भी यह दिखाई देता है क्यों क्योंकि विरोधी विचार और सिद्धांत के राजनीतिक दल भी मिलकर के सरकार का गठन करते हुए दिखाई देते हैं |ऐसी परिस्थिति में यहां विचारों और सिद्धांतों के अनुरूप राजनीतिक दलों के कार्य करने का विषय प्राथमिक में रह करके, सत्ता प्राप्ति प्राथमिक है | इस तरह की परिस्थिति में घटित होने वाली सरकार अस्थिर रही है|

#### 4.4 भारत में गठबंधन करने में मत भिन्नता को बहुत महत्व नहीं

भारत में उस समय जो गठबंधन दिखाई देते हैं और उसके बाद के समय में भी जो दिखाई देते हैं उसमें एक बात बड़ी साफ दिखाई देती है सरकार बनाने के क्रम में अपने सिद्धांत एवं मत भिन्नता को बहुत महत्व नहीं देते हैं |सरकार बनाने को प्राथमिकता देते हैं इसकी व्याख्या 2 तरह से की जा सकती है-

एक तो यह की जन सामान्य के हित में अपने सिद्धांत एक मूल्यों को किनारे रखते हुए सरकार के गठन और उसको चलाने पर सहमति बनाकर आगे बढ़ने का कार्य करते हैं |दूसरा मत इस पर यह है की सत्ता प्राप्ति अगर हो रही है तो कोई सिद्धांत और वसूल मायने नहीं रखते |

उसमें राज्यों में अर्थात् 1967 में राज्य में जो सरकारें बनी उन के गठन को देख कर के भारत में मिश्रित सरकार के अर्थ और गठबंधन सरकार की प्रकृति को आसानी से समझा जा सकता है |पश्चिम बंगाल में जो सरकार बनी उसमें 14 राजनीतिक दल सम्मिलित रहे हैं हैं |उत्तर प्रदेश की सरकार में साम्यवादी दल और जनसंघ दोनों थे |दोनों की सरकार में हिस्सेदारी थी जबकि पंजाब में जो गठबंधन सरकार बनी उसमें साम्यवादी दल जनसंघ तथा अकाली दल साथ दिखाई देते हैं |इसलिए उस समय सरकार बनाना प्राथमिकता दिखाई देती है ना कि सिद्धांत| इसी के कारण यह भी पाया गया है यह गठबंधन पूर्णकालिक नहीं रहे ,इस गठबंधन में बनी हुई कोई भी सरकार अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाई | इसलिए जो अनुभव रहा बहुत ही अच्छा नहीं कहा जा सकता|

#### 4.5 गठबंधन सरकार की कार्यप्रणाली

भारत में गठबंधन सरकार के कार्य करने के तौर तरीके बहुत ही सकारात्मक आसान रूप नहीं रहे |खासतौर से शुरुआती दिनों में जो गठबंधन सरकार बनी उस के संदर्भ में विशेष रूप से कहा जा सकता है |यदि बाद की सरकारों के गठन और उसके परिचालन में भी इस तरह के सवाल उठाए जाते रहे परंतु वर्तमान में भारत के गठबंधन की सरकार की राजनीतिक और कार्य संस्कृति में कुछ सुधार होता हुआ दिखाई दे रहा है |गठबंधन सरकार की कार्यप्रणाली को हम तभी बेहतर तरीके से

जान सकते हैं जब हम सरकार के गठन के तरीके को समझ पाए क्योंकि हम पूर्व में स्पष्ट कर चुके हैं कि देश में संसदीय शासन प्रणाली है जिसमें बहुमत की सरकार बनती है अर्थात् निम्न सदन में जिस दल को बहुमत प्राप्त हो। दल के नेता को राष्ट्रपति सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करते हैं। लेकिन जब किसी दल को बहुमत ना हो तो कई दल मिलकर के सरकार बनाते हैं। क्योंकि भारत में देखा गया है कि इस प्रकार से बनने वाले गठबंधन सामान्य न्यूनतम साझा कार्यक्रम के बुनियादी सिद्धांत के आधार पर बनते हैं। कई बार उनमें सिद्धांत जनित मतभेद और भिन्नता दिखाई देती है लेकिन वे न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर सरकार बनाने और उसको चलाने का कार्य करते हैं। लेकिन व्यावहारिक अनुभवों से यह देखा गया है कि इस प्रकार से बनाई जाने वाली सरकार में लोकहित राष्ट्रहित प्राथमिक नहीं रहा है। राष्ट्र की यदि राष्ट्रीय स्तर की सरकारों के संदर्भ में देखें तो राष्ट्र के विभिन्न पक्षों में विकास की आकांक्षाओं और राष्ट्रीय सुरक्षा की जरूरतों में तालमेल बैठाने में उस सीमा तक सफलता नहीं प्राप्त रही जिस सीमा तक अपेक्षित थी। क्योंकि देश विविधताओं से युक्त है जहां सामाजिक संरचना में विविधता है सांस्कृतिक तौर तरीके में विविधता है, जिसकी वजह से हितों में विभिन्नता और विविधता दिखाई देती है इन्हें न्यूनतम स्तर तक पूर्ति और इन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा में जोड़ने का चुनौतीपूर्ण कार्य सरकार के सामने होता है। इसी के साथ-साथ राष्ट्रीय सुरक्षा जो आंतरिक सुरक्षा और बाह्य सुरक्षा दोनों को समाहित करती है इसकी प्राथमिकता भी सरकार की जिम्मेदारी होती है। परंतु चूंकी अधिकांश गठबंधन सरकारों का गठन किसी निश्चित सिद्धांत या मूल्यों के अनुसरण करने वाले विभिन्न राजनीतिक दलों से मिले हुए सरकार तो होती नहीं है। किसी कारण से इस प्रकार से गठित हुई सरकार है अपने कार्यकाल को प्रायः नहीं पूर्ण कर पाए। राज्यों की सरकारें तो अपवाद ही है जिन्होंने अपना कार्यकाल पूर्ण किया है। जबकि इस बात को राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो 1977 में पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन सरकार बनी जिसने अपना कार्यकाल पूर्ण नहीं किया वही बात 1989 1991 1996 1998 के संदर्भ में कही जा सकती है।

#### 4.6 परिवार की आकांक्षा और दलबदल आधारित गठबंधन

गठबंधन सरकार में विभिन्न राजनीतिक दल मिलकर के सरकार बनाते हैं और यह विभिन्न राजनीतिक दल प्रायः किसी विशेष क्षेत्र जाति भाषा धर्म अर्थात् विशेष हित पर आधारित होते हैं, जिनमें परिवार आधारित भारत में दिखाई देता है। परिवार आधारित नेतृत्व होने के कारण जिनमें वंशानुगत परंपरा भी दिखाई देती है। यह गठबंधन राष्ट्रहित और लोकहित के लिए प्राथमिक ना हो करके उन दलों के अपने निजी हित और खासतौर से उस दल विशेष के नेतृत्व अर्थात् उस परिवार के निजी हितों के इर्द-गिर्द घूमता हुआ दिखाई देता है। इसलिए राष्ट्र हित बाधित होता है। साथ ही इस प्रकार की परिस्थिति में सरकार अस्थिर हो जाती है और समय पूर्व सरकार भंग हो जाती है।

कई बार दल बदल के कारण भी गठबंधन की सरकार बनती हुई दिखाई देती है। भारत में जो दलबदल दिखाई देता है उसमें भी राष्ट्र के विकास और सुरक्षा संबंधी आवश्यकताओं के दृष्टिगत

दल बदल नहीं दिखाई देता है। वरन ऐसा व्यक्तिगत आकांक्षा की पूर्ति अर्थात् दल के नेतृत्व के निजी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु दिखाई देता है। एक ही दल में कई समूह उठ खड़े होते हैं, जो उप हितों को ध्यान में रखकर अपने दल के खिलाफ जाकर विघटन कर, अन्य दलों से मिलकर के सरकार बनाने का भी कार्य करते हैं, क्योंकि वह अस्थिर व्यक्तित्व के रूप में दिखाई देते हैं, क्योंकि वह अपने दल के साथ नहीं जुड़ पा रहे हैं, उससे अलग होकर सरकार बनती है और उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो पाती है, तो वह वहां से भी खिसक कर सरकार को गिराने का और स्थिर करने का कार्य करते हैं।

अस्थिर सरकार के होने के कारण लोकतंत्र की भावना के अनुरूप सरकार विकास की आवश्यकताओं जनकल्याणकारी नीतियों और कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक न तो बना पाती हैं न ही उनको लागू कर पाती है। जिससे प्रांत विशेष में वह प्रांत तथा देश के स्तर पर यदि यह होता है तो अखिल भारतीय स्तर पर इस प्रकार के प्रगति और उत्थान के कार्यक्रम गतिशील नहीं हो पाते और विकास की गति रुक जाती है।

किसी भी समाज की पहली जरूरत होती है उसके लोगों को सुरक्षा प्राप्त हो, उसके लोगों के व्यक्तित्व के विकास के आवश्यक अवसर प्राप्त हो, उन्हें जीवन निर्वाह की न्यूनतम आवश्यक वस्तुओं की सहज उपलब्ध सुनिश्चित हो सके लेकिन यह तभी संभव हो सकता है जब विकास का पहिया तेजी से आगे बढ़े। परंतु यदि बहुमत की सरकार नहीं है स्थिर सरकार नहीं है तो गठबंधन की सरकार है ऐसी स्थिति में विकास और प्रगति की महान कहानी लिखना कमजोर गठबंधन की सरकार की क्षमता से बाहर का विषय होता है और समाज राष्ट्र प्रगति की राह से पीछे छूट जाता है तथा अंतरराष्ट्रीय चुनौतियों के समक्ष भी खड़ा होने की स्थिति में अपने आप को नहीं पाता है, जो दीर्घकाल तक राष्ट्र के लिए बहुत ही नुकसानदेह साबित होता है।

यहां एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि पहली बार 1967 में 8 राज्य में गैर कांग्रेसी सरकार बनी तथा राष्ट्रीय स्तर पर 1977 में गैर कांग्रेसी सरकार बनी। फिर बाद के दिनों में राष्ट्रीय स्तर पर कई गैर कांग्रेसी सरकार बनी जैसे 1999 से 2004, 2014 से 2019 और 2019 में गठित सरकार। प्रायः गठबंधन की सरकार सफलतापूर्वक ना तो सरकार ही चला पाई नहीं सरकार के द्वारा प्राथमिकताओं के निर्धारण और विकास के कार्यों को आगे बढ़ाया जा सके। इसे प्रदेश या देश में विकास की गति तीव्र हो सके इसका परिणाम यह हुआ कि जनसामान्य में यह संदेश गया कि कांग्रेस के बिना कांग्रेस से बाहर किसी में सरकार चलाने की सामर्थ नहीं है इसका लाभ कांग्रेस को बराबर मिला। क्योंकि यह दिखाई देता है कि गठबंधन गैर कांग्रेसी गठबंधन सरकार की असफलता के बाद कांग्रेस और मजबूती के साथ चुनाव में आई और उसे राजनीतिक सफलता प्राप्त हुई परंतु 1999 में 2014 में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के नेतृत्व में सरकार ने अपना कार्यकाल पूर्ण किया और देश की राजनीति को खासतौर से गठबंधन सरकार की राजनीति को एक नए आयाम तक पहुंचा दिया

और यह संदेश दिया किया गठबंधन की सरकार न केवल सफलतापूर्वक अपना कार्यकाल पूर्ण कर रही हैं वरन विकास की और राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी प्राथमिकताओं को तय करने में कभी भी पीछे नहीं रही और इस पर भी काफी हद तक सफलतापूर्वक कार्य करने का काम किया है।

गठबंधन सरकारों में अभी देखने में आया है राज्य के स्तर पर मुख्यमंत्री और राष्ट्रीय स्तर पर प्रधानमंत्री सहित मंत्रिपरिषद संबंधित प्रदेश और भारत को वह मजबूत नेतृत्व नहीं दे सके जिसकी राज्य के संदर्भ में मुख्यमंत्री से और अखिल भारतीय स्तर पर प्रधानमंत्री से अपेक्षा होती है।

परंतु भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में गठबंधन सरकार की राजनीति में दिखाई दे रहा है वह जैसा कि हमने देखा 1999-2004(NDA), 2004 से 2009 ,2009से 2014(UPA)और 2014से 2019(NDA) के एनडीए की सरकार जिसने अपने कार्यकाल को पूर्ण किया। जिसमें 2019(NDA) की सरकार ने दो महत्वपूर्ण मसलों पर इन्होंने बड़े ही ऐतिहासिक कार्य की है खासतौर से इनकी नीतियों और कार्यक्रमों को देखा जाए तो इन्होंने समावेशी लोकतांत्रिक नीतियां तथा राष्ट्रीय सुरक्षा के संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए तथा भारत की राजनीति को भी रणनीति की स्थिति को ध्यान में रखते हुए सुरक्षा तैयारियों को भी आगे बढ़ाने का कार्य किया है साथ ही राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में कुछ और मजबूत कार्य किए जिसमें विशेष रूप से उल्लेखनीय है अनुच्छेद 370 और 35A की समाप्ति। इसका प्रमुख कारण इस गठबंधन में भी भाजपा का बहुमत में होना तथा विकास सुरक्षा ,सामाजिक न्याय तथा राष्ट्रीय एकीकरण को लेकर स्पष्टता।

#### 4.7 मिश्रित या गठबंधन सरकारों के असफलता के कारण

उपरोक्त अध्ययन में हमने पाया है कि देश में अधिकांश गठबंधन की जो सरकारें बनी है और लोकहित और राष्ट्रीय आकांक्षाओं की तृप्ति या राज्य के संदर्भ में विभिन्न समूहों के हितों की पूर्ति और राज्य के विकास को गति देने के लिए न हो करके दलों की निजी आकांक्षाएं और दलीय नेतृत्व के निजी आकांक्षाओं के कारण होते हुए दिखाई देती है। इसकी वजह से दलों में बहुत ही दल परिवर्तन दिखाई देता है। दल परिवर्तन के कारण क्योंकि यह दल परिवर्तन निजी आकांक्षा और हितों की पूर्ति के लिए होता हुआ दिखाई देता इसलिए सरकार की स्थिरता पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है। और जब-जब गठबंधन की सरकार जहां-जहां बनी है अपवाद को छोड़ दिया जाए वह अस्थिरता की शिकार हुई। जिसकी वजह से विकास नहीं हो सका क्योंकि परस्पर भिन्न विचारधाराओं के राजनीतिक दलों में सरकार बनाने के लिए गठबंधन हुए। इसलिए इनमें उस स्तर का संबंध ,वह सहयोग नहीं दिखाई देता जो एक सरकार को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए आवश्यक होता है। यद्यपि बनने वाली गठबंधन सरकार है निश्चित रूप से भिन्न वैचारिक आधार के होने के कारण न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार गठित हुई। लेकिन अपनी क्षेत्रीय आकांक्षाओं के दबाव के चलते न्यूनतम साझा कार्यक्रम पर भी वह बहुत लंबे समय तक टिक नहीं पाए ,जिससे सरकार को



चलाने में बड़ी दिक्कतें हुईं और सरकार अपना कार्यकाल पूर्ण करने के पहले समर्थन वापसी के कारण विघटित हुईं।

#### अभ्यास प्रश्न

१. भारत में पहली बार कब गठबंधन की सरकार बनी है ?
२. राष्ट्रीय स्तर पर भारत में सर्वप्रथम किस वर्ष गठबंधन सरकार का गठन किया गया ?
३. सर्वप्रथम किस वर्ष बनी गठबंधन सरकार में एक दल को बहुमत भी रहा है ?

#### 4.8 सारांश

निष्कर्ष उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हमें कर सकते हैं की स्वतंत्रता के बाद के तीसरे आम चुनाव के बाद राज्यों के चुनाव में गठबंधन की सरकारों का दौर शुरू हुआ और धीरे-धीरे वह 1967 से शुरू होकर 1977 में राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन सरकार का गठन हुआ। जो आगे 1989 से प्रारंभ होकर के आज तक गतिशील है। लेकिन समय के साथ साथ गठबंधन सरकार की प्रकृति और उसकी कार्यप्रणाली में बहुत ही अंतर दिखाई देता है। शुरुआती दिनों में यह दिखाई दे रहा है कि जो गठबंधन बने वे उस सत्ता प्राप्ति के लिए बने अर्थात् निजी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए बने जिससे सरकारों में अस्थिरता बहुत दिखाई देती है। बाद के दिनों में धीरे-धीरे खासतौर से 1999, 2004, 2009, 2014 और 2019 में भी सरकार गठबंधन की बनी लेकिन पूर्व की अपेक्षा अलग दिखाई दे रही है। जिसमें 2014 और 2019 के सन्दर्भ में विशेषरूप से उल्लेखनीय है उसका कारण यह रहा कि इसके पूर्व जी क्षेत्रीय दल थे इतनी मजबूत थे इस दौर में धीरे-धीरे कमजोर हुए हैं लेकिन 1999 से लेकर अब तक के गठबंधन सरकारों में भी प्राकृतिक भिन्नता दिखाई देती है क्योंकि 1999, 2004 और 2009 में गठित जो गठबंधन की सरकार थी उसमें किसी भी राजनीतिक दल को बहुमत नहीं प्राप्त था। इसलिए इन सरकारों की प्रकृति और 2014 और 2019 में गठित गठबंधन की सरकार पूर्व गठबंधन की सरकार से ज्यादा मजबूती से कार्य करते हुए दिखाई दे रही है। चाहे वो विकास के संदर्भ में हो, राष्ट्रीय स्तर पर या देश के किसी हिस्से के संदर्भ में हो या सुरक्षा देने आवश्यकताओं के संदर्भ में हो। सरकार बड़ी मजबूती से निर्णय और उस पर कार्यवाही का कार्य कर रही है। वह सुरक्षा चाहे आंतरिक सुरक्षा से जुड़ा हुआ है या बाह्य सुरक्षा से जुड़ा हो। इन सभी मसलों पर वर्तमान गठबंधन की सरकार पूर्व के गठबंधन की सरकार के अपेक्षा ज्यादा मजबूती से खड़ी है और आगे बढ़ रही है। उसका कारण है कि 2014 और 2019 की जो गठबंधन की सरकार है यह अपने में विविधता को समाहित करने का कार्य कर रही है। साथ ही इसमें एक राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त होने के बावजूद गठबंधन की कमजोरियों से मुक्त है। इन दो सरकारों में अर्थात् 2014 और 2019 की सरकार में नहीं दिखाई देती गठबंधन की सीमाएं इन सरकारों में नहीं दिखाई देती। इसलिए यह सफलतापूर्वक कार्य करते हुए आगे बढ़ रही हैं इसलिए भारत के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कहा जा

सकता है कि भारत में जब से गठबंधन सरकार का दौर शुरू हुआ है तब से उसकी प्रकृति में लगातार परिवर्तन हो रहा है और वर्तमान समय तक आते-आते एक मजबूत गठबंधन सरकार का दौर देश में प्रारंभ हुआ है निश्चित रूप से यह देश में विविधता को एक साथ लेकर चलने की दिशा में भी मजबूत उदाहरण के रूप में सिद्ध होगा | साथ ही यह द्विदलीय पद्धति की ओर भी देश को ले जाएगा जो देश को मजबूती प्रदान करेगा |

#### **4.9 शब्दावली**

गठबंधन सरकार – आम चुनाव में जब किसी भी दल को बहुमत न प्राप्त हो तो , कई दल मिलकर सरकार का गठन करते हैं या चुनाव पूर्व कई दल मिलकर चुनाव लड़ें और बहुमत प्राप्त कर सरकार का गठन करे तो उसे गठबंधन सरकार कहते हैं |

#### **4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**

१.1967, २.1977, ३.2014

#### **4.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची**

1. सुभाष कश्यप - पालिटिक्स आफ डिफेक्शन
2. जे.सी. जौहरी - रिफ्लैक्शन आफ इंडियन पालिटिक्स
3. एस.एम.सईद - भारतीय राजनीतिक व्यवस्था
4. जे.सी.जौहरी - भारतीय शासन और राजनीति
- 5.एस. एम सईद – भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

#### **4.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री**

- 1.बी.एल. फडिया- भारतीय शासन और राजनीति
- २.एम.पी.राय, आर .एन. त्रिवेदी – भारतीय सरकार एवं राजनीति

#### **4.13 निबंधात्मक प्रश्न**

1. भारत में गठबंधन सरकार की बदलती प्रकृति की विवेचना कीजिये |

---

## इकाई 5 भारतीय राजनीति में जातिवाद

---

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 भारतीय राजनीति में जाति
  - 5.3.1 राजनीतिक प्रणाली पर जाति व्यवस्था किस प्रकार से प्रभाव
  - 5.3.2 जाति व्यवस्था पर राजनीतिक प्रणाली का प्रभाव
    - 5.3.2.1 पंचायत चुनाव का जाति व्यवस्था पर प्रभाव
- 5.4 सारांश
- 5.5 शब्दावली
- 5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 5.9 निबंधात्मक प्रश्न

### 5.1 प्रस्तावना

इस पुस्तक के अध्ययन में विभिन्न इकाइयों में हमने यह देखा कि भारत में परंपरागत सामाजिक संरचना पाई जाती है। अर्थात् जाति आधारित संरचना पाई जाती है जिसमें पदसोपान क्रम स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। परंपरागत रूप से कुछ जातियां उच्च स्तर की और क्रमशः नीचे आती हुई दिखाई देती हैं। परंतु स्वतंत्रता के बाद एक आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को अपनाया गया। अर्थात् संसदीय लोकतंत्र को अपनाया गया। देश में राजनीतिक जीवन में सभी समान अधिकार प्राप्त किये। तसामाजिक जीवन में भी सभी समान अधिकार प्राप्त संपन्न हुए। उच्चता और निम्नता के आधार को संविधान के द्वारा समाप्त घोषित करते हुए दंडनीय घोषित किए गए। इस आधार पर कई विशेषज्ञों का यह मानना था कि इस आधुनिक राजनीतिक प्रणाली को अपनाने के कारण भारत की जाति आधारित व्यवस्था का अंत हो जाएगा। परंतु यह समझना उनकी भूल थी। क्योंकि कोई भी राजनीतिक प्रणाली किसी अमूर्त जगत में काम नहीं करती है। वह कार्य करती है, वह संचालित होती है, समाज में ही। इसलिए सामाजिक संरचना के सामाजिक जीवन का राजनीतिक जीवन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। लेकिन संसदीय लोकतंत्र में न केवल स्वयं पर प्रभाव को पाया बल्कि स्वयं के द्वारा भी इस सामाजिक संरचना को, जो जाति आधारित है, इसको भी प्रभावित किया है। इन्हीं दोनों पक्षों का अध्ययन विशेष रूप से इस इकाई में किया गया है। अंततः इस इकाई में इस बात का अध्ययन किया गया है कि किस प्रकार से यह जाति व्यवस्था वर्तमान राजनीतिक राजनीतिक प्रणाली के लिए सकारात्मक रही है या नकारात्मक और अगर रही है तो किस हद तक।

### 5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

1. भारतीय राजनीति में जाति के विविध पक्षों के बारे में जान सकेंगे
2. राजनीति पर जाति के प्रभावों का अध्ययन कर सकेंगे
3. जाति पर राजनीतिक व्यवस्था के प्रभाव का अध्ययन कर सकेंगे

### 5.3 भारतीय राजनीति में जाति

भारतीय राजनीति में जाति के पक्षों का अध्ययन करने के लिए दो मुख्य तरीकों से अध्ययन करना नितांत आवश्यक है।

संसदीय प्रणाली में जाति व्यवस्था प्रभावित होती है और परंपरागत रूप से जातीय बंधन शिथिल होते हुए दिखाई देते हैं। एक तरफ कुछ जातियां अपनी महत्वपूर्ण स्थिति को बनाए रखने के लिए राजनीति में सफलता के लिए बहुमत प्राप्त करने के लिए परंपरागत रूप से हाशिए की जातियों के समर्थन को आगे बढ़ी तो आरक्षित क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों और जनजातियों ने मुख्यधारा की जातियों को राजनीतिक सफलता के लिए अपने साथ लेने की आवश्यकता हुई दो तरफा प्रक्रिया ने अभी तक की सामाजिक दूरियां थी उनको कम करने का कार्य किया है।

इसलिए भारतीय राजनीति में जाति के पक्षों का अध्ययन करने के लिए रजनी कोठारी के अनुसार दो मुख्य तरीकों से अध्ययन करना नितांत आवश्यक है -

प्रथम राजनीतिक प्रणाली पर जाति व्यवस्था किस प्रकार से प्रभाव डाल रही है

दूसरा जाति व्यवस्था पर राजनीतिक प्रणाली का क्या प्रभाव पड़ रहा है

#### 5.3.1 राजनीतिक प्रणाली पर जाति व्यवस्था किस प्रकार से प्रभाव

प्रथम तो हम जाति व्यवस्था के राजनीतिक प्रणाली पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करेंगे इस क्रम में यह चर्चा करना नितांत आवश्यक है जैसा कि की परंपरागत भारतीय सामाजिक संरचना पदसोपान आधारित रही है जिनमें कई बार सामाजिक दूरियां भी दिखाई देती है इस व्यवस्था के साथ स्वतंत्रता के उपरांत भारत में जिस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था को अपनाया गया उसे संसदीय संघात्मक लोकतंत्र कहते हैं। जिसमें प्रत्येक भारतीय नागरिक को सम्मान सामाजिक और राजनीतिक अधिकार प्रदान किए गए।

ऐसे में सत्ता प्राप्ति के सभी को समान अवसर प्राप्त हुए सत्ता में हिस्सेदारी के सभी को समान अवसर प्राप्त हुए क्योंकि संसदीय लोकतंत्र में सरकार का संचालन कौन करेगा यह है इस बात पर निर्भर करता है कि निम्न सदन में बहुमत किसके पास है अर्थात् बहुमत प्राप्त करने वाले दल को सरकार बनाने का अधिकार होता है और देश के लिए कार्य करने का संवैधानिक दायित्व प्राप्त होता है इस स्थिति में है स्पष्ट करना कि जहां परंपरागत भारतीय समाज में सामाजिक विभाजन दिखाई देता है। ऐसे में सत्ता प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न समूह एक साथ आए क्योंकि चुनाव प्रक्रिया में कोई एक जाति अपने दम पर चुनाव में बहुमत प्राप्त करने की स्थिति में नहीं रही। ऐसे में उसे अन्य जाति समूहों से संपर्क साध कर उनसे एकजुटता स्थापित करने का कार्य प्रारंभ किया गया। इस प्रक्रिया ने समाज में जो अभी तक भेदभाव थे उसमें काफी शिथिलता है।

परंपरागत भारतीय समाज में जो एक दूसरे से सामाजिक रूप से दूर थे अब राजनीतिक सफलता के लिए सामाजिक रूप से नजदीक आते हुए दिखाई दे रहे हैं। जो परंपरागत रूप से मुख्यधारा की जातियां थी उनको अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए अन्य जाति समूह को साथ लेने की आवश्यकता हुई क्योंकि इन मजबूत स्थिति वाली जातियों में आपसी प्रतिस्पर्धा, अन्य जातियों को अपने साथ लेने के लिए मार्ग प्रशस्त किया जिसका परिणाम हुआ कि मुख्यधारा की जातियों में प्रतिस्पर्धा और मुख्यधारा की जातियों तथा हाथियों की जातियों में प्रतिस्पर्धा इसलिए मुख्य धारा की जातियों ने अभी तक हासिये पर रही जातियों को अपने साथ लेने का कार्य किया। जिससे इनके बीच सामाजिक दूरियां कम होती दिखाई देने लगी। परिणाम यह हुआ कि अभी तक जिन जातियों को जन्म के आधार पर उच्चता और निम्नता गरीब अमीर संपन्न विपन्न और छुआछूत के शिकार थे उन्हें भी इस लोकतांत्रिक प्रणाली में सक्रिय होने का राजनीतिक अधिकार मिला तथा मजबूत स्थिति की जातियों ने स्वयं ही उनके पास जाकर उनके घर जाकर उनको अपने साथ लेना स्वीकार किया। क्योंकि अब उन्हें अपनी पूर्व की प्रभुता संपन्न स्थिति को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था की वे राजनीतिक सफलता प्राप्तकरे। उस राजनीतिक सफलता के लिए अन्य जातियों को साथ लेना आवश्यक हो गया जिससे जातियों के बीच चाहे व्यवस्था के कारण लेकिन प्रारंभिक चरण में राजनीतिक कारणों से सामाजिक दूरियां भी कम होती हुई दिखाई पड़ी जिसका परिणाम हुआ अभी तक जो जातियां क्षत्रिय ब्राह्मण वह शूद्र या मुख्यधारा से वंचित जाती है जिनमें काफी सामाजिक दूरियां भी दिखाई देती रही है अब काफी नजदीक आए।

इसके साथ ही अभी महत्वपूर्ण विषय है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए संसदीय प्रणाली की चुनाव प्रक्रिया में स्थान सुरक्षित किए गए जिसका परिणाम हुआ कि आरक्षित क्षेत्र में आरक्षित समूह की जातियों में आपसी प्रतिस्पर्धा हुई और इन्होंने अपनी जीत के लिए परंपरागत रूप से जो उच्च जाति थी उनके पास राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने के लिए जाने का मार्ग प्रशस्त किया।

दो तरीके से इस संसदीय प्रणाली में जाति व्यवस्था प्रभावित होती है और परंपरागत रूप से जातीय बंधन शिथिल होते हुए दिखाई देते हैं--

एक तरफ कुछ जातियां अपनी महत्वपूर्ण स्थिति को बनाए रखने के लिए राजनीति में सफलता के लिए बहुमत प्राप्त करने के लिए परंपरागत रूप से हाशिए की जातियां के समर्थन को आगे बढ़ी हैं

दूसरे आरक्षित क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों और जनजातियों ने मुख्यधारा की जातियों को राजनीतिक सफलता के लिए अपने साथ लेने की आवश्यकता हुई। दो तरफा प्रक्रिया ने अभी तक सामाजिक जो दूरियां थी उनको कम करने का कार्य है।

### 5.3.2 जाति व्यवस्था पर राजनीतिक प्रणाली का प्रभाव

ऐसा नहीं है कि संसदीय लोकतंत्र ने ही जाति व्यवस्था को प्रभावित किया है और परंपरागत रूप से जो सामाजिक बंधन थे उनमें राजनीतिक कारणों से काफी शिथिलता आई है , सामाजिक दूरियां बढ़ती हुई दिखाई दी ,इसके साथ ही साथ जाति व्यवस्था ने भी राजनीतिक प्रणाली को प्रभावित किया है। इसकी प्रभावशीलता की परिधि के बारे में यह कहना महत्वपूर्ण है की चुनाव प्रक्रियाओं के संचालन की प्रक्रिया में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि राजनीतिक दल जाति आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए जातीय राजनीतिक सफलता की बात करते हुए दिखाई देते हैं तथा विभिन्न राजनीतिक दलों से इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए गठबंधन करते हुए दिखाई देते हैं |इसलिए चुनाव प्रक्रिया में जाति आधारित राजनीतिक दलों के गठबंधन की दिखाई देते हैं तथा जैसा कि पूर्व के पक्ष में अध्ययन करते हुए देखा कि किस प्रकार से राजनीतिक व्यवस्था का प्रभाव सामाजिक जीवन पर पड़ा और जातियों में परिवर्तन दिखाई देता है लेकिन उसमें हमने यह भी देखा है कि राजनीतिक सफलता के लिए अर्थात सत्ता प्राप्ति के लिए बहुमत प्राप्ति की आवश्यकता होती है बहुमत अपने जाति के आधार पर ही नहीं प्राप्त किया जा सकता है | अन्य जातियों के समर्थन की आवश्यकता होती है | तो यह दिखाई देता है कि जाति आधारित राजनीतिक दलों ने जहां अपने संगठित जाति चेतना के आधार पर अपने जाति समूह के संगठित मतदान व्यवहार को प्रेरित किया तो दूसरी तरफ अपने राजनीतिक दल से अन्य जाति के प्रत्याशी को उतार कर के उनका भी समर्थन प्राप्त कर सत्ता प्राप्ति की तरफ आगे बढ़ाने का कार्य किया है | कई बार यह भी दिखाई देता है कि राजनीतिक दल अपने में ही विभिन्न क्षेत्रों में प्रभावशाली जातियों अलग-अलग जातियों को प्रत्याशी के रूप में उतारते हुए दिखाई देते हैं और इस बात का ध्यान रखते हैं कि कहां पर किस जाति समूह के समीकरण सफलता के अनुकूल हो सकते हैं, उसके अनुसार टिकट वितरण और प्रत्याशी का चयन कर चुनाव मैदान में उतारते हुए हुए दिखाई दिए हैं और इसके राजनीतिक सफलता के रूप में परिणाम भी दिखाई दिए है |

यहां इस बात के अध्ययन में यह भी ध्यान में रखना होगा कि अनुसूचित जाति कि संगठित राजनीतिक चेतना ,राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दोनों तरह की राजनीति को प्रभावित किया है क्योंकि न केवल क्षेत्रीय दल वरन , राष्ट्रीय दल भी अपनी संगठनात्मक ढांचे में विभिन्न जातियों को प्रतिनिधित्व देते हुए दिखाई देते हैं ,ताकि चुनाव प्रक्रिया में उन सभी जातियों का राजनीतिक समर्थन उनको हासिल हो | साथ ही सरकार के गठन में विभिन्न जाति समूहों के सदस्य को को मंत्री बनाकर प्रतिनिधित्व देते हुए दिखाई देते हैं | ताकि सरकार में उन सभी को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो और वह एहसास कर सकें की सरकार उनकी है, उनके लिए कार्य करने को तत्पर है। प्रत्याशियों के चयन में भी इस प्रकार की बात क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दोनों स्तर की चुनाव में स्पष्ट दिखाई देता है |यही नहीं स्थानीय चुनाव में भी प्रत्यक्ष रूप से जातीय समीकरण दिखाई देने लगे हैं क्योंकि विभिन्न आयोजन जहां पर अतीत में परंपरागत रूप से एक साथ जाते हुए सभी जातियां नहीं दिखाई देती थी |

### 5.3.2.1 पंचायत चुनाव का जाति व्यवस्था पर प्रभाव

आज पंचायत चुनाव में सफलता की आकांक्षा ने भी अलग-अलग जातियों को एक साथ आने के लिए प्रेरित किया है। यहाँ भी उसी तरह की प्रतिस्पर्धा स्पष्ट दिखाई देती है, जाति व्यवस्था ने वहाँ भी राजनीति को बहुत अंदर तक प्रभावित किया है। प्रथम चरण में मुख्यधारा से वंचित जातियाँ स्वयं में संगठित हुईं और अपने प्रत्याशी को उतारकर के चुनाव में संगठित मतदान के द्वारा राजनीतिक सफलता प्राप्त की हैं। लेकिन अगले चरण में इनमें स्वयं भी प्रतिस्पर्धा दिखाई दे रही है। इसलिए इनके बीच में भी कई प्रत्याशी चुनाव मैदान में उतर रहे हैं। परिणाम हो रहा है कि अन्य परंपरागत रूप से मुख्यधारा की जातियों के पास यह आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण जा रहे हैं, ताकि वह पंचायत चुनाव में सफलता प्राप्त कर सकें। इसी के साथ मुख्यधारा की जाती जिनमें आपसी प्रतिस्पर्धा पाई जाती है, यह भी अपनी राजनीतिक सफलता के लिए उन जातियों के पास जाते हुए दिखाई देते हैं जो अभी तक मुख्यधारा में नहीं रही है। इस प्रकार से जाति व्यवस्था ने भी पूरे राजनीतिक प्रणाली को प्रभावित किया है।

कई बार आलोचक कहते हैं कि लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के अपनाने के बाद भी भारत में जाति व्यवस्था का अंत नहीं हुआ है। जबकि संविधान की भावना के अनुरूप एक जाति विहीन समाज की कल्पना की गई थी परंतु यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि राजनीतिक प्रक्रियाओं का संचालन अमूर्त जगत में नहीं होता है, समाज में ही होता है। इसलिए वह समाज की संरचना से प्रभावित भी होगा और उसे प्रभावित भी करेगा। इस संदर्भ में **रजनी कोठारी** का मत बहुत ही तर्कसंगत प्रतीत होता है कि “भारतीय राजनीति और जाति व्यवस्था के पारस्परिक संबंधों में यह उम्मीद करना कि जाति व्यवस्था का अंत हो जाएगा यह ठीक नहीं है। वह मानते हैं कि कोई भी सामाजिक तंत्र कभी भी पूर्णतया समाप्त नहीं हो सकता इसलिए यह कहना कि भारत में जाति का लोप हो रहा है व्यर्थ है।”

इसी के साथ **रजनी कोठारी** जी यह भी कहते हैं कि “जो लोग भारतीय राजनीति में जातिवाद के विद्यमान होने की शिकायत करते हैं वह एक ऐसी राजनीति की कल्पना करते हैं जो समाज में संभव नहीं है। वास्तव में जिसे राजनीति में जातिवाद कहा जाता है वह जातियों के राजनीतिकरण से अधिक और कुछ नहीं।”

#### अभ्यास प्रश्न

१. भारत में कौन सी शासन प्रणाली अपनाई गई है ?
२. भारतीय लोकतंत्र में जाति व्यवस्था के समाप्त होने की बात करने वालों की आलोचना किसने की है ?

#### 5.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कुछ बातें स्पष्ट हो गईं की परंपरागत भारतीय समाज में आज आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को लागू किया गया है। जहाँ परंपरागत भारतीय समाज में नाना रूप



में सामाजिक नियोग्यताएं थी वही आधुनिक राजनीतिक प्रणाली ने सबको समान राजनीतिक और सामाजिक अधिकार प्रदान किए। फलस्वरूप एक तरफ तो जन सामान्य के लिए सत्ता में हिस्सेदारी का अवसर प्राप्त हुआ तो दूसरी तरफ सत्ता प्राप्त करने के लिए जनसामान्य के विभिन्न घटकों जिन्हें जाति व्यवस्था के विभिन्न घटक कर सकते हैं अर्थात् विभिन्न जातियों के समर्थन के लिए सहयोग के लिए और संगठन के लिए मार्ग प्रशस्त किया। यह कहना आसान नहीं है कि जाति व्यवस्था ने अच्छा किया या बुरा किया। आधुनिक राजनीतिक प्रणाली में लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि परंपरागत रूप से प्रचलित जाति व्यवस्था आधुनिक संसदीय लोकतंत्र लागू करने के उपरांत जातियों को सत्ता में भागीदारी के अवसर के साथ सामाजिक रूप से सम्मानजनक स्थिति प्राप्त हुए। क्योंकि बहुमत प्राप्ति के लिए सभी जातियां एक दूसरे के सम्मेलन और विघटन की प्रक्रिया की हिस्सेदार बनीं। समय-समय पर चुनाव प्रक्रिया में जाति आधारित प्रत्याशियों के चयन, सरकार के गठन में विभिन्न जाति समूहों को मंत्रिपरिषद में स्थान देना, इस प्रकार से राजनीतिक प्रणाली को जाति व्यवस्था ने प्रभावित किया। जाति व्यवस्था ने राजनीतिक प्रणाली का प्रभाव महसूस किया क्योंकि जो हासिये की जातियां थी जो सामाजिक रूप से मुख्यधारा में नहीं थी नाना रूप में नियोग्यताओं की शिकार थी, बहुमत प्राप्ति की आकांक्षा में परंपरागत रूप से मुख्यधारा की जातियों को मुख्यधारा से वंचित जातियों के साथ जुड़ने और उनके साथ चलने को तैयार किया। इस प्रकार से जातियों के बीच बढ़ते राजनीतिक संगठन में सामाजिक दूरियों को कम करने का कार्य किया है। आज वे जाति समूह जो परंपरागत रूप से हाशिए पर थे खानपान और रहन-सहन संबंधी सामाजिक नियोग्यता के शिकार थे, एक साथ सामाजिक धार्मिक सांस्कृतिक आयोजनों में आसानी से देखे जा सकते हैं।

परंतु यहां एक बात और स्पष्ट करना आवश्यक है जाति चेतना राजनीतिक संगठन के साथ राजनीतिक विघटन और क्षेत्रीयतावादी तत्वों को भी बढ़ाने का कार्य करते हुए दिखाई देती है, जो राष्ट्रीय एकीकरण के दिशा में एक प्रमुख बाधा के रूप में सामने आता है। इसलिए उम्मीद नहीं की जा सकती है आगे बढ़ते समय में जन जागरूकता, सकारात्मक दलीय प्रणाली, रचनात्मक विपक्ष, सामाजिक और राष्ट्रीय सरोकार से युक्त राजनीतिक दल और दबाव समूह, निष्पक्ष स्वतंत्र और नियतकालिक चुनाव के माध्यम से जाति की नकारात्मक तत्वों को सीमित करने में काफी सफलता हासिल करेंगे।

### 5.5 शब्दावली

**सामाजिक रूपांतरण** – यह वह प्रक्रिया है जिसमें समाज में संबंधों के स्वरूप में बदलाव दिखाई देता है। जैसे भारत में परम्परागत रूप से कई नियोग्यताएं थी जो समय के साथ बदलती हुई दिखाई दे रही है जिसमें सभी जातियों में आपसी आदान प्रदान में वृद्धि हुई है।

### 5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१.संसदीय शासन प्रणाली २.रजनी कोठारी

**5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची**

1. सुभाष कश्यप - पालिटिक्स आफ डीफेक्सन
2. जे.सी. जौहरी - रिफ्लैक्सन आफ इंडियन पालिटिक्स
3. एस.एम.सईद - भारतीय राजनीतिक व्यवस्था
4. जे.सी.जौहरी - भारतीय शासन और राजनीति
- 5.एस. एम सईद – भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

**5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री**

- 1.बी.एल. फडिया- भारतीय शासन और राजनीति
- २.एम.पी.राय, आर .एन. त्रिवेदी – भारतीय सरकार एवं राजनीति

**5.9 निबंधात्मक प्रश्न**

भारत में राजनीति पर जाति और जाति पर राजनीति के प्रभावों की विवेचना कीजिए?

---

## इकाई-7 : भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

---

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा का विकास

7.3.1 राजनीतिक आधुनिकीकरण के उद्देश्य

7.3.2 राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रभाव

7.3.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

7.4 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण

7.4.1 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेषताएं

7.4.1.1 नौकरशाही

7.4.1.2 पंचायती राज

7.4.1.3 दलीय व्यवस्था

7.4.1.4 दबाव गुट

7.5 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण , अवधारणा के संदर्भ में

7.6 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण का विकास

7.7 परिवर्तनशीलता और भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

7.8 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

7.9 सामाजिक गतिशीलता और भारत

7.10 आधुनिकीकरण की दुविधाएं और भारत

7.11 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की बाधाएं

7.11.1 क्षेत्रवाद की राजनीति

7.11.2 धार्मिक राजनीति

7.11.3 भ्रष्टाचार और आधुनिकीकरण

- 7.12 सारांश  
 7.13 शब्दावली  
 7.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर  
 7.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची  
 7.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री  
 7.17 निबंधात्मक प्रश्न

## 7.1 प्रस्तावना

भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण को समझने से पूर्व हमें राजनीति आधुनिकीकरण को उसके सामान्य अर्थ में समझना जरूरी है। रॉबर्ट एवर्ट के मतानुसार “आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया है जो संसाधनों के तार्किक उपयोग पर आधारित है और जिसका लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना है।” इस अवधारणा को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और संस्कृतिक पहलुओं पर लागू किया जाता है। जब इसे राजनीतिक संदर्भ में लिया जायेगा तो यह ‘राजनीतिक आधुनिकीकरण’ कहलायेगा परन्तु इसे आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और संस्कृतिक पहलुओं से अलग नहीं किया जा सकता।

## 7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप-

- राजनीतिक आधुनिकीकरण की उसके सामान्य अर्थों और राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा का उदय के कारणों को जान पायेंगे।
- आधुनिकीकरण के प्रभावों और परिवर्तनाशीलताओं को समझाने का प्रयास किया गया है।
- आधुनिकीकरण और विकास के सम्बन्धों को भी समझाया गया है। यह बताने का प्रयास किया गया है कि पारस्परिक विघटन के बाद यद्यपि आधुनिकीकरण होता है परन्तु वह बिखर भी सकता है।
- आधुनिकीकरण की दुविधाओं पर विस्तार से चर्चा की गयी है और अंत में यह बताने का प्रयास किया गया है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण का लक्ष्य पवित्र है, यह प्रक्रिया अपरिहार्य है।

### 7.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा का विकास

अब सवाल पैदा होता है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण की विचारधारा क्यों और कैसे अस्तित्व में आयी? एक लम्बे समय तक साम्राज्यवादी देशों ने संसार के अनेक देशों को अपना उपनिवेश बनाये रखा। वह उपनिवेशों का आर्थिक, सामाजिक और संस्कृतिक शोषण करते रहे। राजनीतिक तौर पर उपनिवेश गुलाम बन गये। लेकिन दूसरे विश्व युद्ध के बाद उपनिवेशों में राष्ट्रवाद की लहर दौड़ गयी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष आरम्भ हो गया है और अंततः अनेक एशियाई और अफ्रिकी देश आजाद हो गये। इस तरह नये समप्रभुता सम्पन्न राज्य अस्तित्व में आ गये।

अब यहां राजनीति शास्त्रियों के लिए यह अनिवार्य हो गया कि वह इन राज्यों के व्यवहार और उनकी समस्याओं का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करें इसके लिए उन्होंने व्यवस्था पद्धति को अपनाया जिसका प्रयोग पश्चिम जगत में निरंतर जारी था। उनका मानना था कि गैर पश्चिमी राजनीतिक प्रक्रियों का अध्ययन पश्चिमी राजनीतिक प्रक्रियाओं की सहायता से किया जाना सम्भव था। उन पर पहले से पश्चिमी जगत की संस्थाओं का प्रभाव था। इस तरह जैम्स कोलमैन ने नाइजीरिया का, लूसियन पाई ने बर्मा का तथा अनेक ब्रिटिश और अमरीकी राजनीति शास्त्रियों ने भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका का अध्ययन किया। इन देशों के आंकड़े एकत्रित किये गये और उनकी सहायता से नवोदित राज्यों के व्यवहार का पता लगाया गया। इन आंकड़ों के आधार पर एक सामान्य वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया जाना आवश्यक था इसके लिए डेनियल लर्नर, टेलकोट पारसंस, लूसियन पाई, डेविड एफटर, सेमुअल हटिंगटन, रिगस इत्यादि राजनीति शास्त्री सामने आये और अपनी अवधारणाएं सामने रखी। लूसियन पाई ने राजनीतिक विकास का संस्कृतिक आयाम में डेविट एफटर ने राजनीतिक आधुनिकीकरण के संदर्भ में, रिगस ने द्वंद्वत्मक योजना के संदर्भ में और हटिंगटन ने सामाजिक द्वन्द के संदर्भ में सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

#### 7.3.1 राजनीतिक आधुनिकीकरण के उद्देश्य

सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि विकासशील देशों के लिए आधुनिकीकरण का महत्व क्या है? क्यों पुराना समाज इन तमाम दुविधाओं से गुजरता है? यहाँ हमें यह स्वीकार करना है कि आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे रोक नहीं जा सकता। यह संसार छोटा हो गया है। यातायात और संचार व्यवस्था आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तेज करती है। कोई समाज इसके प्रभावों से अछूता नहीं रह सकता। गति धीमी या तीव्र हो सकती है। लेकिन पूरी प्रक्रिया की एक उपयोगिता और एक लक्ष्य होता है। आधुनिकीकरण से अनेक राजनीतिक समस्याओं का विश्लेषण किया जा सकता है। आधुनिकीकरण समाज का लक्ष्य निर्धारित करता है और यह भी बताता है कि इस लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? यह समाज को एक स्पष्ट दिशा देता है और आर्थिक

सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों को नियंत्रित और संतुलित करता है। परिवर्तन आवश्यकता है। यह परिवर्तनों की सीमा निश्चित करता है।

आधुनिकीकरण भौगोलिक सीमाओं से परे है। यह कहीं आ सकता है। आधुनिक समाज के कुछ निश्चित लक्ष्य होते हैं। आधुनिकीकरण उन लक्ष्यों को पाने में मदद करता है।

कुल मिलाकर राजनीतिक आधुनिकीकरण एक सतत् प्रक्रिया है। यह प्रभावकारी है और प्रत्येक राज्य और समाज को प्रभावित करती है। इसकी गति को धीमा किया जा सकता है, रोका नहीं जा सकता। नवीनतम उदाहरण यह है कि अभी तक कोई सोच नहीं सकता था कि अरब देशों में लोकतंत्र की हवा चलेगी। लेकिन जनवरी 2011 को क्रान्तिकारियों ने तुनेशिया में बेन अली के 23 वर्ष पुराने एकाधिकारी तंत्र को उखाड़ फेंक कर यह आशा जगाई है कि अरब देशों में भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तेज हो चली है। मिस्र में राष्ट्रपति हुसनी मुबारक के विरुद्ध जब क्रान्ति सफल हुई और हुस्नी मुबारक को जाना पड़ा।

### 7.3. राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रभाव

राजनीतिक आधुनिकीकरण का सामाजिक संरचनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है: (1) यह समाज में परम्परागत संरचनाओं की भूमिकाओं को कमजोर करता है। (2) सत्ता में परिवर्तन लाता है। (3) परम्परागत परिवारीय और जातीय सत्ताएं एक प्रथम धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता में परिवर्तित होती हैं। (4) पुराने मूल्यों के स्थान पर नये मूल्य स्वीकार किये जाते हैं। (5) सरकार के अंग स्पष्ट विभिन्नताओं के साथ सामने आते हैं। (6) जातियों और उपजातियों का राजनीतिक प्रक्रियाओं में मिलकर महत्व कम हो जाता है।

### 7.5 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

विकास और आधुनिकीकरण की अवधारणा को परिभाषित करना बहुत कठिन है लेकिन यह तय है कि दोनों का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है और दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। अगर आधुनिकीकरण का लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना है तो हमको पहले आधुनिक समाज को समझना होगा। पाश्चात् अर्थ में आधुनिक समाज का अर्थ है: नगरीयकरण, साक्षरता, सामाजिक गतिशीलता तथा आधुनिक जीवन के लिये यांत्रिकी का प्रयोग। इस तरह परम्परागत समाज का बिखरना और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण का पनपना, न्याय की स्थापना और राष्ट्रराज्य को राजनीतिक सत्ता की अन्तिम इकाई मानना, आधुनिक समाज की पहिचान है। औद्योगिक क्रान्ति ने वास्तव में आधुनिकीकरण की नींव डाली है और यह तैय है कि आधुनिकीकरण की हवा को रोकना अब कठिन है। हंटिंगटन के अनुसार आधुनिकीकरण एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो मानवीय विचार और क्रियाओं के हर क्षेत्र को प्रभावित करती है। उसकी दृष्टि में नगरीकरण, औद्योगिकीकरण,

धर्मनिरपेक्षीकरण आधुनिकीकरण आधुनिक समाज की प्रमुख विशेषताएं हैं। आधुनिकीकरण मूल्यों, व्यवहारों, दृष्टिकोणों और अपेक्षाओं में परिवर्तन लाता है।

विकासशील देशों में सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक विकास साथ-साथ चलता है। गतिशीलता की ऐसी प्रक्रिया एशिया, अफ्रिका और लैटिन अमरीका में स्पष्ट नजर आती है। यहाँ औद्योगिककरण और साक्षरता के कारण नगरीयकरण की प्रक्रिया जारी है। धीरे-धीरे राष्ट्रीय पैदावार बढ़ रही है और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है। लेकिन इन क्षेत्रों के देशों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया धीमी है क्योंकि यहाँ राजनीतिक और आर्थिक स्थायित्व की कमी है और वृहत संचार व्यवस्था के अभाव में जागरूकता कमजोर है। लोकतांत्रिक विचारों की ओर आकृषण कम है। जातीय संघर्षों और गृह युद्धों ने राष्ट्रीय एकीकरण को कमजोर किया है। यह तथ्य राजनीतिक विकास में बाधा है। दूसरे यहाँ राजनीतिक दलों का विकास नहीं हो पाया है और नौकरशाही इतनी अक्षम है कि मांगों की पूर्ति नहीं कर सकती। ( भारत एक अपवाद है) यहाँ यह स्वीकार करना होगा कि आर्थिक विकास और राजनीतिक स्थायित्व में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। लेकिन अक्सर ऐसा भी होता है कि आर्थिक विकास की गति धीमी हो लेकिन राजनीतिक स्थायित्व अधिक हो (भारत) या फिर आर्थिक विकास की गति तेज हो लेकिन राजनीतिक स्थायित्व कम (अर्जेन्टीना) इसलिए आर्थिक विकास की गति बनी रहने के लिये राजनीतिक स्थायित्व एक अनिवार्य शर्त है। (चीन यद्यपि यहाँ लोकतांत्रिक व्यवस्था नहीं है) कुल मिलाकर आधुनिकीकरण के लिए आर्थिक विकास, राजनीतिक स्थायित्व, धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण, उदारवादी जनतंत्रीय सोच, एकीकरण की भावना अनिवार्य है। आधुनिकीकरण अवश्यगामी है, पुराने समाजों को इसके तैयार रहना चाहिए।

## **7.6 भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण**

इस इकाई का उद्देश्य आधुनिकीकरण के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की विशेषताओं, उसके मूल्यांकन, विकास से उसके सम्बन्ध, प्रतिमानों के सम्बन्ध में विश्लेषण, परिवर्तनशीलता से उसका सम्बन्ध, गतिशीलता और बाधाओं का उस पर प्रभाव का अध्ययन करना है।

### **7.4.1 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेषताएं**

संवैधानिक व्यवस्था के अतिरिक्त ऐसी अन्य विशेषताएं हैं जिन्होंने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का चरित्र निर्मित किया जाता है। इनमें प्रमुख हैं नौकरशाही की व्यवस्था, स्थानीय स्वशासन के अंतर्गत पंचायती राज्य की व्यवस्था, दलीय व्यवस्था और दबाव गुटों का अस्तित्व।

#### **7.4.1.1 नौकरशाही**

नौकरशाही देश के प्रशासन में एक केन्द्रीय भूमिका अदा करती है। विशेषता यह है कि जहां प्रशासन की नीति का निर्धारण मंत्रियों द्वारा होता है वहां इन नीतियों का क्रयान्वन नौकरशाही या असैनिक सेवा वर्ग द्वारा होता है। नौकरशाही संगठन की संरचना संविधान के अनुसार है। तीन प्रकार की असैनिक सेवाएँ हैं। केन्द्रीय, अखिल भारतीय और प्रादेशिक सेवाएँ। असैनिक सेवा वर्ग को संवैधानिक सुरक्षा प्राप्त है।

असैनिक सेवा वर्ग अपनी क्रयान्वन, वित्तीय और न्यायिक शक्तियों के कारण बहुत शक्तिशाली संस्था मानी जाती है। लेकिन जहां भारतीय नौकरशाही ने राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को सुगम बनाया है वहां इसके मार्ग में रोड़े भी अटकाये हैं। अप्रचलित प्रशासकीय व्यवस्था का निर्माण, अप्रचलित कार्य पद्धति, भ्रष्टाचार और पक्षपात, पारस्परिक संघर्ष, राजनीतिक हस्तक्षेप, परिणाम स्वरूप राजनीतिक प्रशासकीय द्वन्द्व जातिवाद, साम्प्रदायिकतावाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, इत्यादि ऐसी बीमारियाँ हैं जिन्होंने नौकरशाही को राजनीतिक व्यवस्था के लिए अभिशाप बना दिया है।

#### 7.4.1.2 पंचायती राज

राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों ने संवैधानिक आधार पर देश में पंचायती राज्य संस्थाओं के स्पष्ट निर्देश दिये हैं। यह व्यवस्था स्थानीय शासन का सर्वोत्तम उदाहरण है। संविधान का अनुच्छेद 40 व्यवस्था देता है कि “राज्य ग्रामीण पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियाँ प्रदान करेगा जो स्वशासन के कार्य को सुलभ बना सके”।

बलवन्त कमेटी की सिफारिशों के अनुसार व्यवस्था ऐसी होनी थी जो निचले स्तर तक शक्तियों और कार्यों का विकेन्द्रीकरण कर सके। एक ऐसे संगठन की स्थापना करनी थी जो विकास के सारे कार्यों को पूरा करने की क्षमता रखता हो, और सरकार का काम निदेशन देना, निरीक्षण करना, योजना तैयार करना हो और वित्त व्यवस्था करना हो। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए त्रि-संरचनात्मक ग्रामीण स्थानीय पद्धति को लागू किया गया - अर्थात् ग्राम सभा, पंचायत समिति और जिला परिषद। इन तीनों संरचनाओं में ताल-मेल पैदा किया गया, इनका निर्माण निर्वाचन पद्धति से कराया गया, इनका एक विशेष क्षेत्राधिकार निश्चित किया गया और ग्रामीण स्तर पर प्रत्येक व्यस्क व्यक्ति की भागीदारी सुनिश्चित की गयी।

पंचायती राज्य की एक और विशेषता यह है कि इसमें महिलाओं की भागीदारी आरक्षण के माध्यम से सुनिश्चित की गयी।

किस तरह पंचायती राज्य ने भारत की राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति दी। यह इस बात से स्पष्ट है कि आज देश के लगभग सभी राज्यों में पंचायती राज्य जमीनी स्तर पर लोकतांत्रिक



व्यवस्था को मजबूत कर रहा है। विकेन्द्रीकरण ने सहभागिता को बढ़ावा दिया है, ग्रामीण जीवन सुधारा है और लोगों में अपनी जिम्मेदारियों के प्रति जागरूकता आयी है। पंचायती राज्य ने आधुनिकीकरण में कुछ बाधाएं भी उत्पन्न की हैं। जातिवाद को बढ़ावा मिला है, सामाजिक द्वन्द तेज हुआ है, हिंसा है और निचले स्तर पर भी भ्रष्टाचार का बोल-बाला है। काफी हद तक यह व्यवस्था धन और बाहुबल पर आधारित है। महिलाओं के नाम पर पुरूषों का वर्चस्व है।

#### 7.4.1.3 दलीय व्यवस्था

किसी भी लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के लिए बहुदलीय व्यवस्था का होना अनिवार्य है। विशेषरूप से संसदीय प्रणाली की तो यह रक्त धमनियां हैं। यह स्वीकार किया जाता है कि दल राजनीतिक आधुनिकीकरण में एक अहम भूमिका अदा करते लेकिन शर्त यह है कि इनकी भूमिका सकारात्मक हो। ब्रिटेन और अमेरिका की दलीय व्यवस्था आदर्श मानी जा सकती है और यद्यपि भारतीय दलीय परम्परा ब्रिटेन की देन है परन्तु यह उसके आदर्शों का अनुसरण करने में असफल रही है। कारण अनेक हैं:-

पहला कारण दलों की अंतहीन बढ़ोत्तरी है। ऐसी बढ़ोत्तरी की मिसाल संसार में कहीं भी देखने को नहीं मिलती। इस स्थिति ने लोगों को दुविधा में डाल दिया है। लगभग 100 दल अस्तित्व में हैं जिनमें केवल एक दर्जन का महत्व है। 1979 में जनता पार्टी के टूटने के बाद यह स्थिति और गंभीर हुई है। इस स्थिति ने राजनीतिक व्यवस्था पर अनुचित दबाव डाला है। इसमें कांग्रेस (आई0) कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (मार्क्सवादी) और भारतीय जनता पार्टी ही मुख्य हैं। चुनाव आयोग के चीफ ऐलाक्शन कमिशनर कुरैशी ने ठीक कहा है कि अधिकांश दल पैसा कमाने और छोटे नेताओं की महत्वकांक्षा के कारण अस्तित्व में आते हैं।

दूसरे क्षेत्रीय दलों की भरमार ने भी राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव डाला है। इन दलों का कोई राष्ट्रीय दृष्टिकोण नहीं होता और न ही कोई राजनीतिक विचारधारा या आदर्श। यह दिशाहीन, विचारविहीन दल हैं। शक्ति के भूखो का इन पर नियंत्रण है जो क्षेत्रवाद, जातिवाद और साम्प्रदायिक भावनाओं को भडकाकर अपना लक्ष्य साधते हैं। वे विशिष्ट भाषायी, धार्मिक, क्षेत्रीय, जातीय और संस्कृतिक समूहों के हितों की रक्षा करते हैं। उनका प्रभाव एक क्षेत्र तक सीमित रहता है। केन्द्रीय सत्ता हथियाना इनका लक्ष्य नहीं होता परन्तु यह केन्द्रीय सत्ता का साम्य बिगाड़ने की क्षमता रखते हैं। यह साम्प्रदायिक भी हैं और अलगाववादी भी। यह दल भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण की सबसे बड़ी बाधा हैं क्योंकि इन्होंने सामाजिक संघर्ष और राजनीतिक द्वन्द को पैदा किया है। इन्होंने लोगों की सोच को संकीर्ण किया है।

तीसरे भारत की पूरी दलीय व्यवस्था जातिवादी और साम्प्रदायिक शक्तियों से नियंत्रित है। वोट बैंक की राजनीति, लोकतंत्र को आघात पहुंचाया है।

चौथा इन राजनीतिक दलों पर व्यक्तियों का नियंत्रण है। यह एक आदर्श या विचारधारा से नहीं चलती। इन पर व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं, इच्छाओं इरादों और विचारों का प्रभाव है।

कम्यूनिस्ट पार्टी को छोड़कर किसी दल की कोई स्पष्ट विचारधारा नहीं है। प्रत्येक दल गांधीवाद, लोकतंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के प्रति वचनबद्ध हैं। जबकि यह झूठ है। नतीजा यह है कि लोगों में विचारात्मक असामंजस्य की स्थिति बनी रहती है।

दल बदल एक और एक बड़ी बीमारी है। इस ने लोकतांत्रिक व्यवस्था का विनाश कर दिया है। यह स्वस्थ राजनीतिक व्यवस्था की पहचान नहीं है। दलीय वफादारी कमी, दलीय व्यवस्था को नष्ट करती है। 52वें संशोधन, 1985 से पूर्व यह स्थिति बड़ी भयावह थी।

पांचवे, 1947 से 1977 तक भारत में एक दल का वर्चस्व रहा। इसने एकदलीय शासन व्यवस्था का रूप तैयार किया। इससे एकाधिकारवाद की प्रवृत्ति पनपी और राजनीतिज्ञों को मनमानी करने का मौका मिला। लालफीताशाही और भ्रष्टाचार का बोल-बाला हुआ। यह स्थिति न केवल केन्द्र में बल्कि बिहार, बंगाल और गुजरात में देखने को मिली।

और अंत में यह कहा जा सकता है कि सत्ता के विरोधी दलों ने शासन का सकारात्मक विरोध नहीं किया। विरोधी दल विघटित और भटके हुए रहे। इससे न जनचेतना में कोई वृद्धि हुई और न ही शासन में कोई डर बैठा।

कुल मिलाकर राजनीतिक दलों की भूमिका, उनका आचरण, उनका स्वरूप, उनका चरित्र और उनकी कार्यविधि राजनीतिक आधुनिकीकरण के विरुद्ध रही है।

#### 7.4.1.4 दबाव गुट

दबाव गुट ऐसे संघ हैं जिनकी उत्पत्ति अपने सदस्यों के हितों की पूर्ति करने के लिए हुई है और इन हितों की पूर्ति सरकार पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दबाव डालकर करते हैं। यह राजनीतिज्ञ दलों से अलग है। यह चुनाव में भाग नहीं लेते हैं। सत्ता प्राप्त करना इनका लक्ष्य नहीं होता। परन्तु यह राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव डालने में अहम भूमिका अदा करते हैं।

भारत में दबाव गुटों का विकास धीमा रहा है। स्वतंत्रता के बाद इनका विकास अधिक हुआ है। यह ऐसे समूह हैं जिनकी राजनीतिक दलों के प्रति वफादारियां बदलती रहती हैं। यह अपने सदस्यों के प्रति वफादार होते हैं और इस तरह परम्परावादी और आधुनिक दोनों तत्वों का समावेश होता है। वे आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करते हैं और राजनीतिक दलों की नीतियों को वित्तीय सहायता प्रदान करके प्रभावित करते हैं। यह दल देश में अराजकता, हिंसा और अव्यवस्था की स्थिति भी पैदा करते हैं। इस तरह वे हितों की पूर्ति के लिए परिस्थितियां पैदा करते हैं।

इन दबाव गुटों में वाणिज्य समूह, मजदूर संघ कृषक समूह, धार्मिक, जातीय, जनजातीय और छात्र संगठक विशेष है।

सच तो यह है कि भारत में दबावों समूहों की भूमिका बहुत सकारात्मक नहीं है। गुर्जर आंदोलन इसका उदाहरण है। आधुनिकीकरण की दृष्टि से इनकी भूमिका विवादास्पद है।

### 7.5 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण , अवधारणा के संदर्भ में

हमें यहां यह स्वीकार करना चाहिए कि क्योंकि अभी भारत एक विकासशील देश है। इसलिए यह राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा है, इसका अभी आधुनिकीकरण नहीं हुआ है और न ही इसकी कोई राजनीतिक पद्धति पूर्ण रूप से विकसित हुई है। यहां हम राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा के संदर्भ में भारतीय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास करेंगे।

### 7.6 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण का विकास

पहले विस्तार से लिखा जा चुका है कि उपनिवेशवाद के अंत के बाद भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई। यद्यपि 1858 से भारत इस अवधारणा की ओर अग्रसर होने लगा था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारत को स्वतंत्रता मिलने के अवसर पैदा होने लगे थे जेसा 1935 के एक्ट में भी स्पष्ट था। भारतीयों में शासन में भागीदार की इच्छा जाग्रत होने लगी थी जो लूसियन पार्सि के अनुसार विकास और संस्कृति की अनिवार्य शर्त थी। स्वशासन, स्वराज्य और स्वतंत्रता की मांग इसके उदाहरण थे। इसके साथ ही जैसा कि ऑरगेन्सकी का मानना है भारत में राजनीतिक एकीकरण, औद्योगिकीकरण , जनकल्याण और संसधनों की बहुलता के भी चिन्ह अंकित होने लगे थे। यह आर्थिक विकास के लिए जरूरी था। भारत में एक संवैधानिक व्यवस्था के तहत पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक गतिशीलता सुनिश्चित हो चली थी।

राजनीतिक दृष्टि से आजादी के बाद भारत ने लोकतांत्रिक व्यवस्था का रास्ता चुना । पारम्परिक व्यवस्था से निकलकर लोकतंत्र के माध्यम से भारत विकसित होना चाहता था। संविधान की प्रस्तावना इसका प्रतीक है।

कुल मिलाकर जैसी आधुनिकीकरण की परिभाषा है, स्वतंत्रता के बाद विशेषरूप से भारत आधुनिक समाज की स्थापना के लिए संसाधनों का तार्किक सदुपयोग करने को तैयार था। जवाहरलाल नेहरू का संसाधनों का सदुपयोगों पर गहरा जोर था। भारी औद्योगिकीकरण की संरचना का खाका उन्होंने भावी भारतीय समाज के विकास के लिए तैयार किया था।

आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व राजनीतिक लोकतंत्र करता है या सर्वाधिकारी। भारत ने पहली व्यवस्था को अपनाया है जबकि चीन और सोवियत संघ ने दूसरा रास्ता अपनाया है।

जैसा कि लिखा जा चुका है आधुनिकीकरण के तीन प्रतिमान (मॉडल्स) हैं: उदारवादी लोकतंत्र, साम्यवादी तंत्र, सर्वाधिकारवाद। प्रत्येक व्यवस्था में अपनी आर्थिक व्यवस्था, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण और समाजिक संरचना होती है। लेकिन कुल मिलाकर उनके विचारकों के अनुसार आधुनिकीकरण का सम्बन्ध आर्थिक पैदावार (ग्रोथ) से होता है। आर्थिक पैदावार औद्योगीकरण पर निर्भर है। औद्योगीकरण सामाजिक संरचनाओं को भी प्रभावित करता है। जब सामाजिक, आर्थिक, संस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आते हैं तब राजनीतिक आधुनिकीकरण होने लगता है।

भारत के संदर्भ में हम देखते हैं कि यहां पारम्परिक सत्ता का हास 1858 से ही आरम्भ हो गया। उसके स्थान पर विशेषरूप से स्वतंत्रता के बाद एक एकल, धर्मनिरपेक्ष और राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता का उदय हुआ। राजनीतिक व्यवस्था की मांगों को पूरा करने के एक अत्यंत दक्ष केन्द्रीकृत प्रशासकीय सेवावर्ग अस्तित्व में आया। व्यक्तियों में राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी की भावना बढ़ी। पंचायती राज इसकी एक मिसाल है। नई राजनीतिक संस्थाओं जैसे राजनीतिक दल, हित समूह, सामाजिक आंदोलन अस्तित्व में आये और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्सम्बन्धों की भावना बढ़ी। भारत की ओर से गुट निरपेक्षता के आंदोलन का बढावा देना इसका उदाहरण है। नये मूल्य जैसे समाजवाद और मौलिक अधिकारों के विचार पनपे।

भारत में आधुनिकीकरण लगभग दोनो चरणों से होकर गुजरा है- ऐतिहासिक और विकासवादी। यह विकास का परिणाम है यद्यपि यह पूर्ण नहीं है, सत्त विकास की ओर अग्रसर है। इसके संरचनात्मक और संस्कृतिक प्रतिरूप सामने आने लगे हैं जिनमें अन्तर्ता, संस्थाकरण और राष्ट्रीय एकीकरण महत्वपूर्ण हैं।

### 7.7 परिवर्तनशीलता और भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

पहले बताया जा चुका है कि परम्परा, समय, नेतृत्व और संकट यह चार परिवर्तनशीलताएं हैं जो राजनीतिक आधुनिकीकरण को प्रभावित करती है। भारत में 1857 से ही परम्परा और आधुनिकीकरण का टकराव देखने को मिलता है। धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों के समय यह टकराव तेज हुआ और आज भी खूब पंचायतो के निर्णय आधुनिक न्यायपालिका को चुनौती देते नजर आते हैं। 1857 के बाद परिस्थितियों के अनुसार आधुनिकीकरण में गतीशीलता आयी। जहां तक नेतृत्व का प्रश्न है भारत के आधुनिकीकरण में एक अत्यंत कुशल नेतृत्व की भूमिका रही है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी का और स्वतंत्रता के बाद आधुनिक भारत के निर्माण के लिए जवाहरलाल नेहरू का नेतृत्व बहुत महत्वपूर्ण रहा है। आज भी देश में नेतृत्व की कमी नहीं। भारत को तीसरी शक्ति बनाने में भारतीय नेतृत्व की प्रशंसा करनी होगी। आज भारत में जो संरचनाएं

और संस्कृति उभरी हैं और एक सक्षम राजनीतिक व्यवस्था अस्तित्व में आई है, इसमें भारतीय नेतृत्व का कुशल निदेशन तथा मूल्य कारक बने हैं। अन्त में वे संकट हैं जो किसी भी राजनीतिक व्यवस्था का सामना करते हैं। इनमें राष्ट्रीय पहिचान, राजनीतिक वैद्यता और प्रवेश मुख्य हैं। लोग राजनीतिक व्यवस्था के प्रति वफादार हुए हैं राष्ट्र को उन्होंने अपनी पहिचान बनाया है। दूसरी ओर चुनावों के माध्यम से आधुनिक अभिजात वर्ग तथा सत्ता को वैद्यता मिली है। प्रवेश की दृष्टि से एक केन्द्रीकृत शक्ति-संसद अस्तित्व में आई है, अन्तिम सत्ता की एक अन्तिम मानवीय संस्था-कार्यपालिका का उदय हुआ है। वैधानिकता प्रदान करने के लिये एक मानवीय स्रोत न्यायपालिका ने जन्म लिया है। राजनीतिक संचार की व्यवस्था, लोगों की भागीदारी, राजनीतिक दलों का उदय सुनिश्चित हुआ है। संसाधनों का दोहन करके उनका सदुपयोग आरंभ हुआ है जिससे आर्थिक विकास में गतिशीलता आई है। परन्तु यह अन्त नहीं है। भारतीय संस्थाएँ एवं संरचनाएँ किसी न किसी में दबाव में रहती हैं। पर यह कहा जा सकता है कि पिछले साठ सालों से इन संरचनाओं ने दबावों का सफल सामना किया है। त्रिशंकु लोक सभा ने किसी न किसी प्रकार से शासन को स्थायित्व दिया है।

### 7.8 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

विकास और आधुनिकीकरण का गहरा सम्बन्ध है। लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना है पर आधुनिक समाज क्या है, यह समझना होगा। आधुनिक समाज का अर्थ है नगरीयकरण, साक्षरता सामाजिक गतिशीलता और तकनीकीकरण। आधुनिक जीवन की यह अनिवार्य शर्तें हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिकीकरण का अर्थ है पारम्परिक समाज का विखरना और सामाजिक सम्बन्धों में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाना, न्याय की स्थापना और राष्ट्रीय राज्य को एकमात्र राजनीतिक इकाई मानना। इस तरह आधुनिकीकरण एक क्रान्ति है। इसे रोक पाना कठिन है।

भारत के संदर्भ में हम देखेंगे कि 1947 के बाद से औद्योगिकीकरण के माध्यम तथा तकनीकी के प्रयोग से शहरो और गांवों का विकास हुआ है। पंच वर्षीय योजनाओं ने इस गति को तेज किया है। तेजी से नगरीयकरण हुआ है और जैसा कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना दर्शाती है। सामाजिक सम्बन्धों में धर्मनिरपेक्षता का दृष्टिकोण अपनाया गया। समाजवाद सामाजिक समानता लाने का एक महत्वपूर्ण उपकरण बना है। राज्य की नीति के निदेशक तत्वों ने सामाजिक न्याय को और मौलिक अधिकारों की संवैधानिक व्यवस्था ने स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया है। मूल्यों, दृष्टिकोणों और अपेक्षाओं में परिवर्तन आया है। लगभग सभी राजनीतिक दल समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के प्रति वचनबद्ध हैं।

### 7.9 सामाजिक गतिशीलता और भारत

भारत में सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक विकास साथ साथ चल रहे हैं। उदाहरण के लिये औद्योगिकीकरण ने साक्षरता, नगरीयकरण की दर यदि एक ओर बढ़ाई है तो राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ा है।

और प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ी है। गत दस वर्षों से इस वृद्धि में गति आई है। साक्षरता लगभग 80 प्रतिशत है, नगरीयकरण में 100 प्रतिशत वृद्धि हुई, राष्ट्रीय उत्पादन 9.2 प्रतिशत बढ़ा है। प्रति व्यक्ति आय 1960-90 की तुलना में चौगुनी हो गई है। लेकिन चुनाव राजनीति ने लोकतंत्र के उच्च आदर्श को नहीं पाया है। दलगत राजनीति, राजनीतिक अपराधीकरण और धन शक्ति ने लोकतंत्र को दबाव में डाल दिया है। नौकरशाही पूरी तरह लालफीताशाही में परिवर्तित हो चुकी है। जनता और सेविगर्म में दूरियाँ बढ़ी हैं। इसके बावजूद क्योंकि आर्थिक विकास हो रहा है, राजनीतिक व्यवस्था विखरी नहीं है। साथ ही राजनीतिक व्यवस्था के स्थायित्व ने आर्थिक विकास को गतिशील रखा है। ऐसी कोई उम्मीद नहीं है कि भारत का आधुनिकीकरण पाकिस्तान की तरह बिखर जाये। फिर भी भारत में पूरी तरह से आधुनिकीकरण आ चुका है, यह कहना अतिशयोक्ति होगा।

भारत में आधुनिकीकरण प्रक्रिया को गतिशील हुए लगभग 60 वर्ष हुए हैं। अतः हम अभी ब्रिटेन और अमरीका से लगभग 200 वर्ष पीछे हैं। भारत में पारम्परिक संस्थाएँ अस्तित्व में हैं। एक केन्द्रीय परिवार का विकास नहीं हुआ है। लेकिन एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की मजबूत नींव पड़ी है। भारत अमरीका और चीन के बाद एक निश्चित आर्थिक पैदावार के स्तर की ओर बढ़ रहा है, यद्यपि इसको झटके लगते रहते हैं। भ्रष्टाचार और हिंसा ने भारतीयों में निराशा को बढ़ावा दिया है। भारत में जनसंख्या विस्फोट ने आर्थिक खुशहाली को सीमित किया है। यद्यपि 1980 के दशक से स्थिति बदली है। शिक्षा के क्षेत्र में देश बहुत आगे बढ़ा है। विशेषरूप से तकनीकी शिक्षा में एक क्रान्ति आई है। फिर भी साक्षरता की दर शत प्रतिशत नहीं हुई है। 99 प्रतिशत बच्चे स्कूल जाते हैं परन्तु सीखते कुछ नहीं। परिणामस्वरूप मानवीय शक्ति की बरबादी हो रही है। बेरोजगारी का कारण जनसंख्या विस्फोट है। नवयुवक पश्चिमी देशों की ओर भाग रहे हैं। नगरीयकरण के कारण लगभग सभी औद्योगिक नगरों पर दबाव बढ़ा है। नगर गन्दे हुए हैं, यातायात के जमाव से संकट पैदा हुआ है। अपराधीकरण बढ़ा है और मूल्यों में गिरावट आई है। दिल्ली संसार के सब से गन्दे और असुरक्षित शहरों में से एक है। यह सारी बातें आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को दबाव में रखती हैं।

### 7.10 आधुनिकीकरण की दुविधाएं और भारत

जहां तक परम्पराओं का प्रश्न है भारतीयों में भी यह दुविधा है कि वे किस परम्परा को छोड़ें और किस नई संरचना को अपनाएं। ग्रामीण जीवन अभी पुराना है। लोगों को उस से लगाव है। वे नहीं चाहते कि महिलाएं पढ़ें और आगे बढ़ें। दूसरा भारत में जो परिवर्तन आ रहा है वह विकास का परिणाम है। क्रान्ताकारी परिवर्तनों को लाने में दुविधा है। तीसरे भारतीय जातीय और साम्प्रदायिक वफादारियों से निकलकर धर्मनिरपेक्षता की ओर जाने में असमंजस की स्थिति में रहते हैं। इसलिए भारतीयों में गहरी जातीयता और साम्प्रदायिकता की जड़ें मजबूत हैं। राजनीति का धर्मिकरण इसका एक उदाहरण है। राजनीतिक समीकरण जातीय और धार्मिक होते हैं। चौथे राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या है। भारत में यह स्थिति गंभीर है। जातीय, साम्प्रदायिक और भ्रष्ट शक्तियों ने एकीकरण को

कमजोर किया है। भाषा और क्षेत्र इस दिशा में एक बाधा हैंफिर भी यदि राष्ट्रीय एकीकरण की इच्छा हैतो यह आशाजनक तत्व है। पांचवे भारत में सबसे अच्छी बात यह हैकि यहां लोकतंत्र को एकाधिकारवाद या साम्यवाद की कोई चुनौती नहीं है। इसलिए भारतीयों में राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को लेकर कोई दुविधा नहीं है। छोटे भारत में विचारात्मक जड़ता नहीं है। नवीन विचार अस्तित्व में आते है जैसे धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, लोकतांत्रिक उदारवाद, विश्व शांति, सामाजिक न्याय इत्यादि। आधुनिक भारत में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समानता का विचार विकसित हुआ है। कुल मिलाकर भारत अब आधुनिकीकरण की दुविधाओं की स्थिति से निकल चुका हैऔर विकास तथा आधुनिकता की ओर अग्रसर है।

### 7.11 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की बांधाएं

भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण सतत् विकास का परिणाम है। भारत में एक निश्चित राजनीतिक व्यवस्था अस्तित्व में आने को है। गत 65 वर्षों में यदि पूरी तरह आधुनिकीकरण नहीं हुआ हैतो उसके कारण हैंजो व्यवस्था पर दबाव का काम करते है। संक्षेप में वह दो प्रकार है:-

#### 7.11.1 क्षेत्रवाद की राजनीति

यद्यपि संसदीय व्यवस्था के लिए बहुदलीय व्यवस्था अनिवार्य हैंपरन्तु दलो की बहूलता औरविशेषरूप से क्षेत्रीय दलो का अस्तित्व आधुनिकीकरण के लिए एक चुनौती है। डी0एम0के0, ऐ0आई0ऐ0डी0एम0के0, तेलगूदेशम, अकाली दल, समाजवादी पार्टी, जनता दल, नेशनल कांफ्रेंस और बहुजन सजाज पार्टी ऐसी राजनीतिक दल हैं जो क्षेत्रवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद और अलगांववाद की संकीर्ण राजनीति चलाकर अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति करते हैं। इनका कोई राष्ट्रीय दृष्टिकोण या विचारधारा नहीं होती। यह राजनीतिक व्यवस्था के लिए संकट पैदा करते हैं। केन्द्रीय सत्ता में सम्मिलित होकर यह विघटन की स्थिति पैदा करते हैं।

क्षेत्रवाद का सम्बंध देश के एक क्षेत्र से होता है। जहां भाषा, संस्कृति और एक विशिष्ट आर्थिक समुदाय की समानरूपता हैंवहां क्षेत्रवाद पनपता है। यह मनोवैज्ञानिक स्थिति है। क्षेत्रवाद के समर्थक स्वयं को राष्ट्र से कम क्षेत्र से अधिक जोड़ते है। इनका दृष्टिकोण राष्ट्रवादी नहीं होता यह क्षेत्रीय स्वतंत्रता के पक्षधर होते हैं। भारत में यह स्थिति बड़ी गंभीर है।

क्षेत्रीय अनेकता क्षेत्रवाद का कारण हैयहां लगभग दो दर्जन परिभाषित एक रूप भाषाई क्षेत्र है। इनकी अपनी संस्कृति अपनी ऐतिहासिक परम्पराएं है। अनेक अन्य तत्वों ने इनका निर्माण किया है। जिनमें जन्म जातीय, धार्मिक, राजनीतिक और पारम्परिक तत्व है।

भारत में क्षेत्रवाद की अनेक मांगें हैं जिनमें भारतीय संघ से अलग होना, प्रथक राज्य का दर्जा, अर्न्तराज्य में विवाद आदि हैं। तमिलनाडू, नागालैंड, मिजोरम, खालिस्तान और जम्मू-कश्मीर राज्य में ऐसी अलगाववादी मांगें उठी हैं। मेघालय, तिलंगाना, विदरभा, हरित प्रदेश, पूर्वांचल इत्यादि प्रथक राज्यों की मांगें महत्वपूर्ण हैं। उत्तराखण्ड, झारखंड और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों के निर्माण ने प्रथक राज्य की मांग को बढ़ावा दिया है। महाराष्ट्र, मैसूर सीमा विवाद जिसमें आन्ध्रा और कर्नाटक का जल विवाद प्रसिद्ध है। कृष्णा आयोग 2011 ने इस विवाद को हल करने का प्रयास किया है।

एक नया क्षेत्रवाद सामने आया है। जिसका सम्बन्ध आंतरिक प्रवास (माईग्रेशन) से महाराष्ट्र में यह समस्या विकट है जहां उत्तर भारतीय प्रवासीयों के विरुद्ध शिवसेना ने एक संगठित आंदोलन छेड़ रखा है। आसाम में भी यह समस्या विकट है।

यह कहा जा सकता है कि पहचान का संकट आर्थिक विकास की विशमता और संकीर्ण निहित स्वार्थ क्षेत्रवाद को जन्म देते हैं। राजनीतिक व्यवस्था के साम्य को बिगाड़ते हैं।

#### 7.11.2 धार्मिक राजनीति

धर्मनिरपेक्षता आधुनिकीकरण की एक अनिवार्य शर्त है। इसका अर्थ है एक भौतिक जीवन जो धर्म के बंधनों से मुक्त हो। जहां आस्था सर्वोपरि न हो लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यक्ति का कोई निजी धर्म न हो। धर्म निरपेक्ष राजनीति को धर्म से अलहदा करती है। धर्म का विरोध नहीं लेकिन धर्म का सहयोग भी नहीं। यह राज्य का लक्ष्य है। राज्य धर्म की आजादी देता है लेकिन धार्मिक नहीं बनाता। राज्य के सामने सब समान है। कल्याणकारी राज्यधर्म का पौशक नहीं होता। वह अर्थ व्यवस्था का पौशक होता है। संविधान ने धर्म निरपेक्षता राज्य की गारंटी दी है।

लेकिन सच है कि जहां संविधान की आत्म धर्मनिरपेक्ष है वहां व्यवस्था में इस आत्मा को कुचला गया है। स्वयं डा० राधाकृपा और महात्मा गांधी धर्मपरक राजनीति के पक्षधर थे और आज भारत की पूरी राजनीति किसी न किसी तरह धर्म केन्द्रित है। लगभग सभी धर्म अंधविश्वासों, अतार्किक हठधर्मों और कूरुतियाँसे पीड़ित है। सब धर्मों के सम्मान का अर्थ है कि सारी गंदगी का सम्मान। राज्य कुरीतियों का निवारण करने में सक्षम नहीं है। धार्मिक पाखंड समानता स्वतंत्रता और भाईचारे को निषेध करता है। सर्वधर्म समाभाव का विचार एक कोरी कल्पना है।

लगभग सभी धर्मों में धार्मिक कट्टरपन और रूढीवाद पनपा है। समान व्यक्तिक कानून लागू नहीं है। न्यायपालिका आस्था और धर्म के आधार पर निर्णय देती है। यह स्थिति गंभीर है।



राजनीतिज्ञ सत्ता प्राप्ति के लिए धर्म का सहारा लेते हैं। सम्प्रदायिक आधार पर वोट बैंकों की राजनीति राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करती है। राज्य धर्म का पौशक है। धार्मिक समूहों से गठजोड़ करता है और धार्मिक आदेशों (फतवों) का समर्थन करता है।

कुल मिलाकर भारतीय राजनीति व्यवस्था धर्म के दबाव में है, जो आधुनिकीकरण के लिए एक खतरा है।

### 7.11.3 भ्रष्टाचार और आधुनिकीकरण

सन्थानम ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि भारत पुनः सोने की चिड़िया बन सकता है। यदि यहां भ्रष्टाचार न हो सन्थानम को अब से लगभग 30 साल पहले दुःख था कि भारतीय न्याय पालिका जो भ्रष्टाचार का शिकार हो गयी है।

तब 2010 से 2011 में यह स्थिति क्या है। सम्भवतः जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार की पकड़ मजबूत हुई है। जब पैमाने पर घोटोले इस बात का संकेत हैं कि भ्रष्टाचार ने पूरी तरह आर्थिक व्यवस्था को दबा लिया है। सुखना भूमि घोटाला इसका उदाहरण है जिसमें जनरल राथ को कोर्ट मार्शल से दण्डित किया गया। अर्थात् अब सैना में भी कीटाणु प्रवेश कर गया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भ्रष्टाचार पर उच्च न्यायालय को फटकार यह सिद्ध करती है कि न्यायपालिका दूषित हो चुकी है। 2-जी स्पैक्ट्रम घोटाला एक और उदाहरण है। कामान्स वेल्थ खेलों में जो घोटाले हुए वह सर्वविधित है। मुम्बई आदर्श भवन का काण्ड सैनिक पदाधिकारियों, बाबुओं और नेताओं के असली चहरे को दर्शाता है क्या यह स्थिति भारत को महानतम आर्थिक शक्ति बनाने में सहायता प्रदान कर सकती है इसमें संदेह है।

जब आर्थिक व्यवस्था चर्मरोग थी तो राजनीतिक व्यवस्था का साम्य बिगड़ गया और इस तरह आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को ठेस पहुंचेगी।

कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता, धार्मिक कहरता, भाषावाद, क्षेत्रवाद भारतीय आधुनिकीकरण की बड़ी बाधाएं हैं।

### 7.12 सारांश

संक्षेप में के उक्त भाग में जो तथ्य हमने पढ़े हैं उनमें राजनीतिक आधुनिकीकरण का अर्थ, यह अवधारणा क्यों और कैसे पनपी, किन राज्यों का राजनीति शास्त्रियों ने अध्ययन किया, कौन से महत्वपूर्ण राजनीति शास्त्री थे जिन्होंने आधुनिकीकरण की अवधारणा निर्मित की, जैसे विषयों की विवेचना की गई है।

साथ ही आधुनिकीकरण के प्रतिमानों, उसके प्रभावों, परिवर्तन शीलताओं जिनमें परम्परा, समय, नेतृत्व और संकट सम्मिलित है, का भी विस्तार से अध्ययन किया गया है। राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास का गहरा सम्बन्ध है। दोनों का लक्ष्य आधुनिक समाज की रचना करना है। उन प्रतिमानों या कारकों को स्पष्ट किया गया है जो आधुनिक समाज के लिए अनिवार्य हैं। परम्परागत समाज का विखरना और उसके स्थान पर एक धर्म निरपेक्ष, उदारवादी, लोकतांत्रिक समाज का उदित होना, आधुनिकीकरण की अनिवार्यता है। यह कैसे होता है, इस प्रक्रिया को यहाँ समझाया गया है।

आर्थिक विकास और राजनीतिक स्थायित्व का गहरा सम्बन्ध है। परन्तु आधुनिकीकरण विखर भी सकता है यदि उसकी संरचनाएँ अक्षम हों।

राजनीतिक व्यवस्था के आधुनिकीकरण में नौकरशाही ने सकारात्मक भूमिका भी निभाई है और नकारात्मक भी। नौकरशाही एक ऐसा जाल है जिसमें जनता और उसके प्रतिनिधि बेबस नजर आते हैं। परन्तु यदि असैनिक सेवा वर्ग अपना उत्तरदायित्व निभाये तो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सुगम हो सकती है।

जहाँ तक पंचायती राज्य का सम्बन्ध है इसका लक्ष्य बहुत सुन्दर है। यह भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था प्राण स्रोत है। विकेन्द्रीकरण ने जन भागीदारी सुनिश्चित की है। लेकिन पंचायती राज्य ने संघर्ष और द्वन्द को भी बढ़ावा दिया है। यह स्थिति आधुनिकीकरण में एक बाधा है।

दलीय व्यवस्था ने यद्यपि एक ओर भारत की आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सहयोग दिया है वहाँ उसमें बाधाएँ भी उत्पन्न की हैं। अक्सर राजनीतिक व्यवस्था राजनीतिक दलों के आचरण के कारण दबाव में आ जाती है। संसद को न चलने देना एक उदाहरण है।

अंत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के दौरान लोगों में उत्पन्न दुविधाओं की भी समझाया गया है। कुल मिलाकर यह स्वीकार किया गया है कि राजनीतिक

### 7.13 शब्दावली

1. नौकरशाही (ब्यूरोक्रैसी): एक ऐसी प्रशासकीय व्यवस्था जिसमें नीतियों के निर्धारण में असैनिक सेवीवर्ग।
2. दबाव गुट: ऐसे समूह जो राज्य भीतर वर्गों के हितों की पूर्ति के लिए शासन पर दबाव डालते हैं।
3. अभिजात (एलाइट्स): सत्ताधारी कुलनी वर्ग

---

7.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.15सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1- S.N.Dubey:Indian Political System.
- 2- L.Prashad :Indian National Movement &Constitutional Movement.
- 3- S.N.Dubey:Political Science Theory.

7.16सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Apter, David : Politics of Modernisation (1965)
2. Pye, Lucian : Political culture and Political Development (1955)
3. Parsons, Talcott : Social System (1951)

7.17निबंधात्मक प्रश्न

- 1.राजनीतिक आधुनिकीकरण पर निबंध लिखिए।

---

## इकाई 8 : भारत की राजनीतिक संस्कृति

---

इकाई की रूपरेखा

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 राजनीतिक संस्कृति की परिभाषा
- 8.4 राजनीतिक संस्कृति के आधार
- 8.5 राजनीतिक संस्कृति और स्थायित्व
- 8.6 राजनीतिक संस्कृति, आधुनिकीकरण और विकास
- 8.7 भारतीय राजनीतिक संस्कृति अपनिवेश काल में
- 8.8 संस्कृतिकरण में सुधार आंदोलनो का योगदान
- 8.9 राजनीतिक संस्कृति और स्वाधीनता आंदोलन
- 8.10 महात्मा गांधी की राजनीतिक संस्कृति में भूमिका
- 8.11 राजनीतिक संस्कृति के विकास में संवैधानिक विकास का महत्व
- 8.12 भारतीय राजनीति का वर्तमान स्वरूप
- 8.13 भारतीय राजनीतिक संस्कृतियों की जटिलता
- 8.14 भारतीय राजनीतिक संस्कृति और भारतीय संविधान
- 8.15 जन साधारण की भूमिका
- 8.16 अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति
- 8.17 सारांश
- 8.18 शब्दावली
- 8.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 8.20 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 8.21 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 8.22 निबंधात्मक प्रश्न

### 8.1 प्रस्तावना

राजनीतिक संस्कृति समाज के संदर्भ में राजनीतिक विकास का अध्ययन है। धारणा केवल यह है कि एक राजनीतिक पद्धति का दूसरी राजनीतिक पद्धति से अंतर केवल संरचना के आधार पर नहीं होता, बल्कि राजनीतिक संस्कृति की दृष्टि से भी होता है। इसे यूं समझिये कि यदि इंग्लैण्ड में संसदीय पद्धति सफल हो गयी तो जरूरी नहीं कि भारत या पाकिस्तान में भी सफल हो। कारण राजनीतिक संस्कृतियों की भिन्नता है। प्रत्येक समाज की अपनी एक राजनीतिक संस्कृति होती है जो उस समाज की राजनीतिक व्यवस्था को सार्थकता प्रदान करती है। इतिहास इस संस्कृति का निर्माण करता है।

संस्कृति एक वृहद विचार है। राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का एक अंग है। इसलिए राजनीतिक संस्कृति के समय से अलग करके समझा नहीं जा सकता। राजनीतिक संस्कृतियों में अंतर होता है। भारत और चीन की राजनीतिक संस्कृति में अंतर है। इतिहास संस्कृति का निर्माण करता है।

लोगों की अभिवृत्तियां (एटीट्यूड्स) विश्वास, भावनाएं इत्यादि जो राजनीतिक पद्धति से सम्बन्धित हो राजनीतिक संस्कृति कहलाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि राजनीतिक संस्कृति के लिए एक शासन या राजनीतिक व्यवस्था होनी चाहिए चाहे वह लोकतांत्रिक हो या सैनिक।

राजनीतिक संस्कृति के अध्ययन के लिए क्षेत्र, कृत्य औरी मूल्य अनिवार्य है। यह तीन बातें भावनात्मक पर्यावरण तैयार करती है। राजनीतिक संस्कृति इन्हीं को अभिव्यक्त करती है। इसलिए मूल्यों विश्वासों और अभिवृत्तियों का अध्ययन अनिवार्य है।

सामाजिक संस्कृति के तीन आधार हैं- ऐतिहासिक भौगोलिक तथा सामाजिक आर्थिक। इसका अर्थ है कि इतिहास, भौगोलिक बनावट, सामाजिक मूल्य तथा आर्थिक व्यवस्था राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में अहम भूमिका अदा करते हैं। यह आधार लोगों को सोच और प्रभाव डालते हैं तथा राजनीतिक संस्कृति का निर्माण करते हैं। राजनीतिक संस्कृति स्थिर नहीं है, इसका निरंतर विकास होता रहता है। जब यह परिपक्वता की ओर पहुँचती है तो विकास और आधुनिकीकरण पूर्ण हो जाता है। इंग्लैण्ड और अमेरिका इसके उदाहरण हैं।

### 8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के अपरान्त आप-

- राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा को पश्चिमी राजनीतिक शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के संदर्भ में समझ पायेंगे।

- राजनीतिक संस्कृति की परिभाषा को
- राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति की विवेचना करना है।
- भारतीय राजनीतिक संस्कृतियों के वर्गीकरण के साथ साथ उनके टकराव पर नजर डाली जायेगी।
- संविधान की दृष्टि से भी संस्कृति की विवेचना करना एक लक्ष्य है तथा यह भी देखना है कि जन साधारण का रूख भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के प्रति कैसा है?

### 8.2 राजनीतिक संस्कृति की परिभाषा

राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा का प्रतिपादन अमेरिकी राजनीति शास्त्री उलाम, बियर तथा आमण्ड ने किया है। बाल और पावेल भी इसके समर्थक हैं। बाल के अनुसार “समाज की अभिवृत्तियां (एटीट्यूड्स), विश्वास, भावनाएं और मूल्य जो राजनीतिक पद्धति तथा राजनीतिक मुद्दों से सम्बन्धित होते हैं, राजनीतिक संस्कृति के अंतर्गत आते हैं। इस सम्बन्ध में चार बातों को समझना होगा:

1. समाज के लोगों में एक सामान्य प्रवृत्ति होती है, जैसे भावनात्मक, बैद्विक, नैतिक दृष्टिकोण।
2. सामान्य मानव प्रवृत्ति सामान्य मूल्यों विश्वासों और अभिवृत्तियों को जन्म देती है।
3. यह मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचते हैं और कुछ संशोधनों के साथ समाज की सामान्य संस्कृति का निर्माण करते हैं।
4. समाज की इस सामान्य संस्कृति के कुछ पहलुओं का सम्बन्ध शासन के संचालन से होता है। यही पहलू राजनीतिक संस्कृति है। अर्थात् अभिवृत्तियां, विश्वास तथा भावनाएं राजनीतिक आचरण का निर्माण करके एक संस्कृति को विकसित करती हैं।

लूसियन पाई ने राजनीतिक संस्कृति में तीन तथ्यों का अध्ययन करने पर बल दिया है-

1. राजनीति का क्षेत्र क्या है?
2. राजनीतिक क्रिया के मापदण्ड क्या हैं?
3. वे मूल्य क्या हैं जो राजनीतिक क्रिया के लिए अनिवार्य हैं?

यह कहा जा सकता है कि राजनीति संस्कृति भावनात्मक पर्यावरण को अभिव्यक्त करने का साधन है। इस पर्यावरण के अन्तर्गत कोई राजनीति व्यवस्था कार्य करती है।

राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में इतिहास और परिस्थितियां अहम भूमिक अदा करती है। इसलिए किसी समाज की राजनीतिक संस्कृति को उसके इतिहास के संदर्भ में देखना होगा।

सार यह है कि राजनीतिक संस्कृति जिनविशेषघटकों पर टिकी होती है वे हैं-मूल्य, विश्वास तथा अभिवृत्तियां, जो लोगों की एक राजनीतिक व्यवस्था के रूप में होती है। उदाहरण के लिए यदि व्यवस्था लोकतांत्रिक है तो लोगों की अपेक्षाएं होती हैं कि चुनाव समय पर और निष्पक्ष हो, विश्वास खो देने पर मंत्री त्यागपत्र दें, संसद ठीक प्रकार से चले, कार्यपालिका उत्तरदायी हो, प्रशासन और शासन चुस्त हो, विचारों की अभिव्यक्ति का अधिकार मिले, प्रत्याशियों को चुनने की स्वतंत्रता हो। एक संवेदनात्मक अभिवृत्ति यह है कि विधायकों को संसद में पूरी भद्रता का आचरण करना चाहिए, वे आदर्शों के विपरीत व्यवहार न करें। इसी सोच का नाम राजनीतिक संस्कृति है।

दूसरे शब्दों में इसे यूँ समझिये कि जब संसद या कार्यपालिका संवेदनात्मक अभिवृत्तियों के विपरीत कार्य करती है: दलबल होता है, विधिवत निर्वाचित सरकार गिरा दी जाती है, भ्रष्टमंत्री अपने पद पर बने रहते हैं तब उनके विरुद्ध जो भावनाये पैदा होती है, जो जन आक्रोश उमड़ता है, जो आंदोलन खड़े होते हैं जो क्रान्तियां आती हैं, वह सब राजनीतिक व्यवस्था और अभिवृत्तियों की रक्षा के लिए होता है।

### 8.3 राजनीतिक संस्कृति के आधार

राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लोगों के रख रखाव और विश्वास पर कोई राजनीतिक व्यवस्था टिकी होती है। इस संस्कृति के वे तत्व कौन से हैं जिन की यह उपज होती है जो इसके आधार भी बन सकते हैं, हमें यह देखना होगा। बियर तथा इलाम ने ऐसे तीन आधारों को स्वीकार किया है: ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सामाजिक-आर्थिक।

किसी समाज में एक राजनीतिक व्यवस्था क्यों बनी रहती है और क्यों टूटती है, ये इतिहास बताता है कारण इस समाज की संस्कृति के गर्भ में खोजे जा सकते हैं। इतिहास इसमें सहायता करेगा। उदाहरण के लिए इंग्लैण्ड में राजनीतिक परिवर्तन शान्तिपूर्ण ढंग से धीरे-धीरे आया। यह राजनीतिक संस्कृति का परिणाम है जिनका निर्माण सैकड़ों वर्षों में हुआ। एडमण्ड बर्क ने इस संस्कृति की प्रशंसा की। दूसरी ओर फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था 1789 में क्रांति के माध्यम से टूट गयी और आगे भी उसके टूटने की संभावना बनी रही। तब तक फ्रांस में जो राजनीतिक संस्कृति पनपी उसका आधार हिंसा था। उसमें संवैधानिक, अहिंसात्मक लोकतंत्रीय मूल्यों के प्रति अविश्वास था। राजनीतिक अवधारणा की दृष्टि से फ्रान्स की क्रांति की आलोचना की गयी। क्योंकि वह अधिक टिकाऊ नहीं थी। इसके विपरीत अमेरिका और भारत ने इंग्लैण्ड का अनुसरण किया, क्योंकि इन देशों को एक ऐतिहासिक आधार मिला गया जो लोकतांत्रिक था।

राजनीतिक संस्कृति का दूसरा आधार है, भौगोलिक परिस्थितियां और बनावट। इंग्लैण्ड को सजातीय बनाने का श्रेय उसकी सीमाओं को है। परिणाम स्वरूप लम्बे समय तक यहां अन्य जातियों के लिए प्रवेश द्वार बंद रहे और वहां वह समस्याएं नहीं आयीं जो भारत के सामने आयीं। भारत की लम्बी, चौड़ी सीमाओं के कारण यहां पर जाति और धर्म के लोगों का प्रवेश हुआ और परिणाम स्वरूप भारत एक विजातीय (हैट्रोजीनियस) समाज बन गया। सजातीयता एकता लाती है और सरल सामान्य राजनीतिक संस्कृति बनती है।

भौगोलिक परिस्थितियों ने अंतरराष्ट्रीय संस्कृति को भी जन्म दिया है। परन्तु इसका आधार भी राष्ट्रीय राजनीतिक संस्कृति माना जायेगा। प्रभाव क्षेत्रों की राजनीति को निश्चित करने का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व उसकी भौगोलिक स्थिति को है।

राजनीतिक संस्कृति का तीसरा निर्धारक तत्व सामाजिक आर्थिक स्थिति हैं सामाजिक आर्थिक विकास के दो पहलू हैं- शहरी आद्योगीकरण समाज तथा ग्रामीणकृषकसमाज। प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति और विकास पहले रूप की विशेषता है, अनुरूपता और जड़ता दूसरे रूप की। परन्तु कुछ समय के पश्चात विज्ञान और तकनीकीकरण का प्रभाव औद्योगिक समाज और कृषकसमाज दोनों पर तेजी से पड़ता है। उत्पादन बढ़ता है, यातायात और संचार व्यवस्था विकसित होती है, आयात और निर्यात बढ़ता है, प्रवासन (माइग्रेशन) और उत्प्रवास (इनमीग्रेशन) की प्रक्रिया आरंभ होती है। इसका प्रभाव क्रांतियों और युद्धों पर पड़ता है।

परिणाम स्वरूप लोगों के राजनीतिक मूल्यों तथा विश्वासों में परिवर्तन आने लगते हैं। कृषकमजदूर बन जाते हैं, मजदूर बोरजुआई बन जाते हैं और साम्राज्यवादी व्यवस्था लागू हो जाती है। इस प्रक्रिया का प्रभाव राजनीति पर पड़ता है और नयी राजनीतिक संस्कृति पनपती है।

#### 8.4 राजनीतिक संस्कृति और स्थायित्व

राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक स्थायित्व और परिवर्तन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यह लोगों को सत्ता से जोड़ती है। सत्ता राजनीतिक व्यवस्था में स्थायित्व, प्रभावशीलता तथा प्रतिनिधित्वता स्थापित कर सकती है। उदाहरण के लिए ब्रिटेन में लोकतंत्रीय मूल्य लोकतंत्रीय सत्ता का निर्माण करते हैं जो राजनीतिक व्यवस्था में गहरा स्थायित्व लाते हैं, जबकि फ्रांस में केन्द्रीयकरण की व्यवस्था है और वहां इसकी प्रशंसा होती है। दोनों देशों में अपनी-अपनी राजनीतिक संस्कृति है। यहां यह विश्वास टूट जाता है कि केवल लोतांत्रिक या संसदीय व्यवस्था ही अच्छी होती है। सर्वाधिकारवाद भी अच्छा हो सकता है। अगर सत्ता में स्थायित्व पैदा करे। चीन इसका उदाहरण है।

#### 8.5 राजनीतिक संस्कृति आधुनिकीकरण और विकास



राजनीतिक संस्कृति से जुड़ी हुई अगली समस्या है राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास की। यही राजनीतिक परिवर्तन है। परम्परावाद तथा आधुनिकीकरण एक दूसरे के विरोधी हैं। नेतृत्व और समय समाज को आधुनिकीकरण के ओर ले जाना चाहते हैं, परम्परावाद मार्ग में बाधाएं उत्पन्न करता है।

राजनीतिक विकास के दो पहलू हैं- अनुदार और प्रगतिशील। अनुदार पहलू क्रांतिकारी परिवर्तन का विरोधी है, जबकि प्रगतिशील पहलू धीरे-धीरे आधुनिकीकरण का हामी है। इसके अन्तर्गत परम्परागत संस्कृति की सजीव बातों को स्वीकार करके उनका मेल नवीन व्यवस्थाओं से कराया जाता है। नेहरू का यही दृष्टिकोण था। यह बदलाव तीसरी दुनिया की विशेषता है।

#### 8.6 भारतीय राजनीतिक संस्कृति उपनिवेशकाल में

17वीं सदी में अंग्रेज भारत में आये तब यहां मुगलों का राजतंत्रीय शासन था। लोग अधीनस्थ थे और खामोशी से सत्ता को स्वीकार करते थे। अंग्रेजों ने पहले व्यापारियों के रूप में भारत में अपन प्रभाव जमाया। फिर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने प्लासी युद्ध 1757 के बाद भारत पर राजनीतिक अधिकार जमा लिया। एक लम्बे समय तक यहां भी लोग कम्पनी के शासन को सहन करते रहे। उनकी भागीदारी शून्य थी। 1857 में यह धैर्य टूट गया। लोगों की सोच बदली, कुछ राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई और इस तरह विद्रोह हो गया। यहां से भारत में राजनीतिक संस्कृति का निर्माण आरम्भ होता है। इस सोच का एक परिणाम यह निकला कि कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और भारत की सत्ता की बागडोर ब्रिटिश ताज और संसद के हाथों में आ गयी। यहां से सवैधानिक विकास शुरू हो गया। इसका अर्थ यह नहीं था कि भारत में लोकतंत्र की स्थापना आरम्भ हो गयी। राजनीतिक व्यवस्था सर्वाधिकारवादी बनी रही।

यह साम्राज्यवाद का काल था। भारत इंग्लैण्ड का पूरी तरह से उपनिवेश बन गया। वाणिज्य पूंजी जो कम्पनी की विशेषता थी, औद्योगिक पूंजी में बदल गयी और अन्ततः उसने वित्त पूंजी का रूप ले लिया। सारांश यह है कि उपनिवेशवादी दौर में भारत में एक आर्थिक व्यवस्था पनपी जो औद्योगिकीकरण का परिणाम थी। 19वीं सदी तक यहां इसका पूरा विकास हो गया। भारतीय घरेलू उद्योग धन्धे चौपट हो गये लेकिन भारतीय सब कुछ सहन करते रहे। फिर भी निराशा और असंतोश गहराया।

आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ राजनीतिक व्यवस्था भी अंकुरित होने लगी। 1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट ने भारत में एक गर्वनर-जनरल, उसकी परिषद और सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की। 1784 के एक्ट में दोहरा शासन पूरी तरह अस्तित्व में आ गया। वाणिज्य पूंजी ने भारत को इंग्लैण्ड का एक बाजार बना दिया जो कच्चा माल भी निर्यात करता था। आधुनिक इंग्लैण्ड वास्तव में औद्योगिक

पूँजीवाद के कारण भारतीय लूट पर बना। प्रथम युद्ध से पूर्व भारत में वित्त पूँजी का दौर रहा। भारत का शोषण पूरी तरह बढ़ गया। असंतोश और गहराया।

### 8.7 संस्कृतिकरण में सुधार आन्दोलनों का योगदान

जहाँ एक ओर शासन की नीतियों ने राष्ट्रीय भावनाओं को जन्म दिया, वहाँ धार्मिक और सुधार आन्दोलनों ने इस प्रवृत्ति का विकास किया। यहाँ यह मानना होगा कि राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में विशिष्ट जातियों की भूमिका का बहुत महत्व होता है। यह व्यक्ति व्यवस्था अथवा इतिहास से प्रभावित होकर जन साधारण की सोच बदलते हैं। ऐसे व्यक्तियों में स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, राज राम मोहन राय, सर सय्यद अहमद खॉ इत्यादि आते हैं। आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन तथा थ्योसाफीकल सोसायटी भारतीयों को उनके गौरवशाली अतीत की ओर ले जाना चाहती थी। यह वेदों को ज्ञान का स्रोत मानते थे।

इन आन्दोलनों ने भारतीयों में पश्चिमी जगत के बारे में सोच बदली। वे स्वयं को अब श्वेत पुरुष का भार नहीं मानना चाहते थे। वे अपने भाग्य का फैसला अब स्वयं करना चाहते थे।

इस तरह धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने प्रत्यक्ष रूप से जिस तरह उनकी इच्छाओं, भावनाओं, महत्वाकांक्षाओं और अभिव्यक्तियों को प्रभावित किया उसने तत्कालीन शासन या सत्ता के प्रति धीरे धीरे एक नकारात्मक रुझान पैदा किया जो उस समय की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में साधक हुआ।

### 8.8 राजनीतिक संस्कृति और स्वाधीनता आन्दोलन

निराशा, हताशा और उदासी का परिणाम 1857 का विद्रोह था। वह पहला स्वाधीनता संग्राम था जो वेरहमी से कुचल दिया गया। सर सय्यद ने “असबाबे बगावत-ए-हिन्द, में लिखा कि जातीय दंभ और सामाजिक असमानता विद्रोह का कारण थे। विद्रोह के बाद ब्रिटिश संसद का शासन आरंभ हुआ। नीतियाँ बदली। 1858 के एक्ट ने कुछ मरहम लगाया। अतः शिक्षित भारतीयों की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति पुनः सोच बदली। ब्रिटिश इण्डिया एसोसिएशन 1851 तथा इण्डियन एसोसिएशन 1876, बंगाल नेशनल लीग 1884 इत्यादि अस्तित्व में आये। इसका लक्ष्य भारतीयों और अंग्रेजों के दृष्टिकोण में ताल मेल बिठाना था।

जैसा कि लिखा जा चुका है राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में भूमिकाओं और अभिकर्ताओं का बड़ा योगदान होता है। ओ ह्यूम ऐसे ही अभिकर्ता थे। दादा भाई नैरोजी, फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने ह्यूम का साथ दिया। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अस्तित्व में आ गई।

कांग्रेस की पहली विचार धारा को उदारवादी माना जाता है। अर्थात् शासन के प्रति नरम दृष्टिकोण, ब्रिटिश शासन को एक वरदान मानना, मांगों के लिये संवैधानिक तरीके अपनाना, स्वशासन की मांग करना इत्यादि। इस उदारवाद का कारण था नेतृत्व पर अंग्रेजी या पश्चिमी संस्थाओं, विचारों, मूल्यों, संस्कृतियों का प्रभाव। अतः 1885 से 1900 तक भारतीयों का यही दृष्टिकोण रहा। बाद में कांग्रेस में उग्र विचारधारा पनपी। कारण था शासन की निरंकुशता और उदासीनता, कुप्रशासन, बंगाल का विभाजन और दमना। इस उग्रता ने 1905 में स्वदेशी आन्दोलन को जन्म दिया। स्वतंत्रता की मांग उठी, द्रन्द बढ़ा और कांग्रेस का विभाजन हो गया।

उधर मुसलमान आशंकित होने लगे। बहुसंख्यक अल्पसंख्यक मनोवृत्ति पैदा हुई। स्वराज्य आन्दोलन ने इस द्रन्द को तेज किया। परिणाम स्वरूप मुस्लिम लीग अस्तित्व में आ गई। यहाँ से आरम्भ हुई साम्प्रदायिकता की राजनीति और राष्ट्रवादी विचारों का विघटन होने लगा। लार्ड कर्जन और लार्ड मिंटो इसके लिए जिम्मेदार थे। 1916 तक इस राजनीति का वरचस्व रहा। 1909 के एक्ट या मारले-मिंटो सुधारों ने भी इसकी तीव्रता को कम नहीं किया। लेकिन जैसे ही यह महसूस किया गया कि धर्म विभाजन या वर्ग विभाजन का लाभ सत्ता पक्ष उठा रहा है, तब 1916 में लखनऊ पैक्ट अस्तित्व में आ गया। उदार अनुदार का मेल और हिन्दु मुस्लिम एकता इसका परिणाम था।

### 8.9 महात्मा गान्धी की राजनीतिक संस्कृति में भूमिका

हम पहले लिख चुके हैं कि राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में अभिकर्ता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। महात्मा गान्धी इस अर्थ में अद्वितीय अभिकर्ता थे। दक्षिण अफ्रिका से लौटकर उन्होंने अपनी सत्याग्रह के उपकरण का सफल प्रयोग किया। यह प्रयोग एक भावनात्मक अभिवृत्ति पर टिका हुआ था जिसे गान्धी ने अहिंसा कहा। खिलाफत के संकट और रौलेट एक्ट ने उनके सत्याग्रह के प्रयोग का अवसर दिया। जलियान वाला बाग काण्ड ने समस्या और उग्र कर दी। भारतीयों में सत्ता के प्रति आक्रोश था। विद्रोह या हिंसक क्रान्ति का वातावरण बना ऐसे में महात्मा गान्धी के सत्याग्रह के उपकरण ने लोगों को शान्तिपूर्ण तरंगों की ओर मोड़ दिया। असहयोग आन्दोलन 1920 इस का परिणाम था। भारतीय अहिंसा के मार्ग पर चल पड़े। यह एक बड़ी क्रान्ति थी। लेकिन चोरी चोरी काण्ड के बाद महात्मा गान्धी ने महसूस किया कि लोग अभी पूरी तरह से अहिंसक नहीं हुये थे, उन्होंने आन्दोलन वापस ले लिया। वास्तव में महात्मा गान्धी अहिंसात्मक राजनीतिक संस्कृति के पक्षधर थे। 1930 और 1932 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी इसी संस्कृति की अभिव्यक्ति थे।

गान्धी जी के आन्दोलनों का दूसरा पक्ष यह था कि वह समाज में किसी प्रकार का वर्ग संघर्ष नहीं चाहते थे। वह आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में एकीकरण और एकता समरसता के पक्षधर थे। 1923 से लेकर 1947 तक उनकी पूरी राजनीति इसी बात पर टिकी रही।

लेकिन हमें एक तथ्य यही भी स्वीकार करना होगा कि भारतीय सामाजिक, धार्मिक और संस्कृतिक अनेकता और द्वन्द से पीड़ित रहे हैं। इसका लाभ सत्ता पक्ष ने उठाया है। भारत का 1923 से 1947 तक का इतिहास द्वन्द और संघर्ष का इतिहास है जिसने अन्ततः भारत का विभाजन करा दिया। यद्यपि गान्धीवादी आन्दोलन ने भारतीयों में स्वराज और स्वतंत्रता की चेतना पैदा की और उनमें राष्ट्रीयता की भावना जन्मी लेकिन अखण्ड भारत के रूप में वे एक राष्ट्र की कल्पना को साकार नहीं कर सके। आन्दोलनों का नतीजा केवल यह निकला कि वे अब किसी भी तरह ब्रिटिश शासन को सहन करने के लिए तैयार नहीं थे।

### 8.10 राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में संवैधानिक विकास का महत्व

भारत में संवैधानिक विकास वास्तव में 1858 से आरम्भ होता है। 1857 के विद्रोह ने यह सिद्ध कर दिया था कि भारतीय एकाधिकारवादी सत्ता को अधिक सहन नहीं कर सकते थे। अंग्रेज भारतीयों की मनोवृत्ति को समझ रहे थे। भारतीय सत्ता में किसी न किसी रूप में भागीदारी चाहते थे। 1858 के अधिनियम ने ताज को सत्ता सौंप दी। एक भारतीय परिषद की स्थापना की गई। दोहरे शासन की व्यवस्था समाप्त कर दी गई। परन्तु स्थिति ज्यों की त्यों रही।

इधर भारत के नवयुवक अंग्रेजी उच्च शिक्षा की ओर आकर्षित हो रहे थे। अंग्रेजी साहित्य, दर्शन, मूल्यों और इतिहास का उन पर प्रभाव पड़ने लगा था। यद्यपि वे पूरी तरह ब्रिटिश शासन को एक वरदान समझते थे लेकिन भारतीय सत्ता में वे भागीदारी चाहते थे। उनकी यह सोच इंग्लैण्ड से प्रभावित एक नई राजनीतिक संस्कृति को जन्म दे रही थी। इसी नई सोच का नतीजा था 1861 का भारतीय परिषद अधिनियम।

### 8.11 भारतीय राजनीतिक संस्कृति का वर्तमान स्वरूप

भारत की राजनीतिक संस्कृति के सम्बन्ध में कुछ पश्चिमी लेखकों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं जो बहस का विषय है। ऐसे विचारकों में माइन बीवर और मारिस जॉस के नाम उल्लेखनीय हैं। यहाँ उनके विचारों पर संक्षेप में विचार किया जायेगा।

भारत में स्वतंत्रता के बाद से लोगों का आधुनिकीकृत होना आरम्भ हो गया है। इनका अपना राजनीतिक ज्ञान अपने राजनीतिक विश्वास, अपनी राजनीतिक अभिवृत्तियाँ, राजनीतिक धारणाएँ, शासन के प्रति दृष्टिकोण इत्यादि हैं। यह राजनीतिक प्रक्रिया में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भागीदार हैं। इनकी राजनीतिक संस्कृति स्थानीय स्तर से विकसित होकर जिला स्तर की राजनीति और जिले से राज्य स्तर की राजनीति में प्रवेश कर रही है। यह सारी प्रक्रिया कैसे चल रही है, किन चरणों से होकर गुजर रही है यह अध्ययन का विषय है।

### 8.12 भारतीय राजनीतिक संस्कृतियों की जटिलता

भारतीय राजनीतिक संस्कृतियां जटिल और अस्पष्ट हैं। इनके यथार्थ को समझना कठिन है। भारत में सिद्धान्त में और व्यवहार में गहरा अंतर है। इसलिए राजनीति के केवल बाहरी रूप को देखकर वास्तविकता का पता लगाना कठिन है।

दूसरे भारत एक बहुलवादी देश है। यहां संस्कृतियों में गहरी असमानता हैं इसलिए राजनीतिक संस्कृतियों में भी असमानता और अस्पष्टता है। धार्मिक और भाषाई अंतर राजनीतिक संस्कृतियों को और उलझा देता है। जिसे समझना कठिन है। प्रादेशिक विभिन्नता अपना कार्य करती है। बिहार की और बंगाल की राजनीतिक संस्कृति गुजरात और महाराष्ट्र से भिन्न है। पहली वर्ग संघर्ष पर आधारित हैं तो दूसरी वर्ग सहयोग पर। इसलिए भारतीय राजनीतिक की एक पद्धति खोजना कठिन है।

तीसरे, लोगों में आचरणों, व्यवहारों, मूल्यों और अभिवृत्तियों में गहरा अंतर है। महाराष्ट्र के लोगों की सोच और तमिलनाडु के लोगों की सोच में अंतर है। मॉरिस जॉस ने भारतीय राजनीतिक जीवन के तीन श्रेणियों में विभाजित किया है, जिसको उसने भारतीय राजनीति के तीन मुहावरे कहा है। यह हैं आधुनिक (मार्डन), परम्परावादी (ट्रेडीशनल) और संतवादी (सेन्टली)। अर्थात् भारत में तीन विचारों वाले लोग हैं- वे जो पश्चिमी की आधुनिकता से प्रभावित हैं। जो उदार है, धर्मनिरपेक्ष है, समानता और स्वतंत्रता में विश्वास रखते हैं। देश में तकनीकी विकास का वे कारण है। दूसरे वे लोग हैं जो परम्परावादी विचारों के पोषक हैं। यह जाति भेदभाव पर विश्वास रखते हैं। स्थानीय हितों को महत्व देते हैं। तीसरा वर्ग वह हैं जो निस्वार्थ सेवा और आत्म-बलिदान में विश्वास रखता है। यह नैतिक साधनों को अपनाते हैं। इनके मूल्य ही आदर्श होते हैं। यह छिपकर काम करते हैं। राजनीतिक तौर पर महत्वकांक्षी नहीं होते।

### 8.13 भारतीय राजनीति संस्कृति और भारतीय संविधान

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था भाषा और आचरण का वास्तव में निश्चयकरण भारतीय संविधान ने किया है। अर्थात् भारतीय संविधान में निहित आदर्शों और सिद्धान्त भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के चरित्र का निर्माण करते हैं। संसदीय भाषा और विचार, उच्च प्रशासकीय पदाधिकारियों का दृष्टिकोण और प्रशासन का स्वरूप, राजनीतिक दलों का संगठन और उनके आचरण की सीमाएं और मीडिया या समाचार पत्रों की भाषा आदि तक राजनीतिक संस्कृति का नमूना पेश करते हैं। संविधान ने भारतीयों को विकसित देशों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया है।

उधर संवैधानिक विशेषता के कारण न्यायपालिका की जो व्यवस्था हैं उसने राजनीति को आधुनिक और सुसंस्कृत करने का प्रयास किया है। न्यायपालिका की सक्रियता सामाजिक, आर्थिक,

राजनीतिक और धार्मिक प्रत्येक क्षेत्र में देखने को मिलती है। वास्तव में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय संविधान की व्याख्या करके राजनीतिक व्यवस्था को नियंत्रित करता है।

राज्य की नीति के निदेशक तत्व भारतीय संविधान की मूल भावना-लोकतंत्र, सामाजवाद और धर्मनिरपेक्षता का प्रतिपदान करवाते हैं। यह समानता की अवधारणा को साकार करते हैं।

संघात्मकता ने भारतीय राजनीति को विकेन्द्रीकृत किया है। वास्तव में संघात्मकता ने देश की विभिन्न राजनीतिक संस्कृतियों के मध्य एक ताल-मेल पैदा किया है। जिस से उत्तरदायित्व और समरसता की भावना बढ़ी है।

#### **8.14 जनसाधारण की भूमिका**

यहां जनसाधारण से अर्थ आम भारतीयों की आशाओं, उपेक्षाओं, संवेदनाओं, दृष्टिकोणों और अभिवृत्तियों से है। अर्थात् सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के बारे में वे क्या सोचते हैं और कैसा आचरण करते हैं। उदाहरण के लिये लोगों का यह विचार है कि उनके नेता भ्रष्ट हैं, लापरवाह हैं और अक्षम हैं, सरकारों में शासनीयता (गवर्नेंस) का अभाव है (जैसा कि 15 जनवरी 2011 को भारत के लगभग 20 प्रतिशत उद्योग पतियों ने शासन की उदासीनता के सम्बन्ध में मंत्रियों को पत्र लिखा) सत्ताधारी जनता का पैसा लूटते हैं, करोड़ों ₹ के हार पहनते हैं और केवल अपने वर्ग को समर्पित हैं। अथवा लोगों की यह सोच कि नेता असुसंस्कृत, अशिक्षित और अपराधी हैं। संसद में उनका आचरण अशोभनीय और उनकी भाषा गैर संसदीय है। यह कि राजनीतिक दलों का आचरण, उनके हथकण्डे, उनकी तकनीकी लोकतंत्र के लिए एक खतरा है। उनका यह दृष्टिकोण कि उनका नेतृत्व माफियाओं, जमाखोरों, तस्करो इत्यादि के चंगुल में है। आम भारतीय की राजनीतिक संस्कृति को दर्शाता है। यह वह संस्कृति है जिसमें निराशा है और हताशा है।

परन्तु आम भारतीय संविधान और न्यायपालिका की सक्षमता और सूचना के अधिकार की उपयोगिता को स्वीकार करते हैं। इसलिए उनका मानना है कि भारत कमियों के बाद भी एक मजबूत शासन व्यवस्था वाला देश है। इसमें आघातों और दबावों का सामना करने की क्षमता है। इस तथ्य ने भारतीय राजनीतिक संस्कृति को सहभागीदारी का रूप दिया है।

#### **8.15 अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति**

अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति भारतीय राजनीति की विवेचना से राजनीतिक संस्कृति के अवधारणात्मक संदर्भ में कुछ सामान्य तथ्य सामने आते हैं। जो इस प्रकार हैं-

1. राजनीतिक पद्धति और मुद्दों से सम्बन्धित भारतीयों की अपनी अभिवृत्तियां हैं। उनमें कहीं न कहीं सामान्यता है। जैसे राष्ट्रियता की भावना।

2. भारत में एक भावनात्मक पर्यायवरण है, जो राजनीतिक संस्कृति को निश्चित करता है। जैसे लोकतंत्र के प्रति आस्था।

3. भारतीय राजनीतिक संस्कृति के तीनों आधार हैं-ऐतिहासिक, भौगोलिक और सामाजिक। इस कारण यहां द्वन्द भी हैं और समरसता भी।

4. भारत में समय बदलने के साथ मूल्य और विश्वास भी बदले हैं। लोग राजनीति का अर्थ समझने लगे हैं। अर्थात् राजनीतिक संस्कृति का लौकिकीकरण हुआ है।

5. भारतीय राजनीतिक संस्कृति ने बाधाओं के बाद भी राजनीतिक व्यवस्था को स्थायित्व दिया है। संसार भारतीय लोकतंत्र की प्रशंसा करता है।

6. राजनीतिक संस्कृति ने यद्यपि कहीं ने कहीं आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर है।

7. भारतीय राजनीतिक संस्कृति लोकतंत्र, साम्राज्यवाद उदारवाद और धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा पर टिकी है। इसमें गांधीवादी विचारों का समावेश है।

8. भारतीय राजनीतिक संस्कृति में भागीदारों और अधीनस्थों की भूमिका है। इनमें भूमिकाएं भी हैं और अभिकर्ता भी।

संक्षेप में अवधारणात्मक दृष्टि से भारत में एक राजनीतिक संस्कृति पनपी है यद्यपि वह जटिल है।

### 8.16 सारांश

राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा ने आधुनिक राजनीति विज्ञान के अध्ययन में बहुत योगदान दिया है। इसने एक ऐसा उपकरण प्रदान किया है जो राजनीतिक विज्ञान की सूक्ष्म-वृहद (माइक्रो-मैक्रो) खाई को पाटने में सफल है। इस अवधारणा से सम्पूर्ण व्यवस्था का अध्ययन किया जाना सम्भव हुआ है। राजनीतिक शास्त्री अब सामाजिक और संस्कृतिक शक्तियों का अध्ययन करके राजनीतिक संस्कृति को पहिचानेगा। यहां व्यक्ति की तार्किक और अतार्किक सभी बातों का अध्ययन किया जायेगा। परन्तु इसका अनुदार और प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण राजनीतिक संस्कृति को उलझा देता है। यह अवधारणा अस्पष्ट और भटकी हुई है।

भारतीयों की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में उपनिवेशवादी व्यवस्था, राजनीतिक एकाधिकारवाद, जातीय दंभ और असमानता, अन्याय और दमन का बड़ा हाथ है। 1857 के विद्रोह से लेकर 1886 तक की कहानी यही है। 1885 में कांग्रेस के रूप में उदारवादी और 1900 में इसी दल में उग्रवादी चेतना ने राजनीतिक संस्कृति को पनपने में बड़ा योगदान दिया। बंगाल विभाजन के परिणाम स्वरूप 1905 की राजनीति ने देश में उग्र राष्ट्रवाद के जन्म दिया। लेकिन गान्धीवादी आन्दोलनो ने

भारतीयों को शान्तिमय तरंगों की ओर मोड़ दिया। यह एक अद्वितीय अनुभव था। 1923 के बाद से भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता ने खुलकर खेल खेला। जिसका परिणाम भारत के विभाजन के रूप में निकला।

राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी और इसके प्रति जागरूकता राजनीतिक संस्कृति का लौकिकीकरण (सैक्यूलराइजेशन) है। राजनीतिक संस्कृति के लौकिकीकरण से राजनीतिक स्थायित्व आता है। राजनीतिक विकास और आधुनिकीकरण राजनीतिक संस्कृति का परिणाम है। राजनीतिक विकास के दो पहलू हैं-अनुदार और प्रगतिशील। पहला क्रान्ति का विरोधी है दूसरा विकास का समर्थक।

राजनीतिक संस्कृति के अध्ययन में विचारधारा का बहुत महत्व है। विचारधारा राजनीतिक मूल्यों के प्रति लोगों के आचरण का निर्माण करती है। विचारधारा कठोर और लचीले दो रूप की है। विचारधारा विकासवादी परिवर्तन और क्रान्ति दोनों का कारण बन सकती है।

राजनीतिक संस्कृति के अन्तर्गत राजनीतिक पद्धति के अध्ययन में परिवारों, भीड़ों, मतदाताओं, गुटों शक्तियों तथा प्रभावों का भी अध्ययन किया जाता है। राजनीतिक संस्कृति के दो भाग हैं- सक्रिय और निष्क्रिय। राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक संरचना एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त राजनीतिक व्यवस्था भूमिकाओं की एक संरचना है। इसमें भागीदार अभिकर्ता है। राजनीतिक संस्कृति को चार भागों में बांटा जा सकता है। संकीर्ण राजनीतिक संस्कृति, अधीनस्थ राजनीतिक संस्कृति तथा भागीदार राजनीतिक संस्कृति। आमण्ड के अनुसार एंगलो-अमेरिकी व्यवस्था, महाद्विपीय यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था तथा पूर्व आद्योगिक राजनीतिक व्यवस्था।

कुल मिलाकर यह कह जा सकता है कि राजनीतिक संस्कृति की एक अवधारणा एक उपकरण है जिसके माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था को समझा जा सकता है।

### **8.18 शब्दावली**

1. इलीट्स (अभिजात वर्ग): यह वर्ग जो शिक्षित है, धनी है और सजग है।
  2. पैटर्न (पद्धति) : किसी घटना का एक ऐसा सिलसिला जो उसके एक निश्चित चरित्र का निर्माण करता है।
- एटीट्यूड (अभिवृत्तियाँ) किसी या घटना के प्रति रुझान या सोच।
3. हेतरोजीनस ( विजातीयता) किसी समाज या राज्य में विभिन्न भाषाई, संस्कृतिक और सामाजिक समूह।



4. होमोजीनस (सजातीयता) किसी समाज का आधार एक ही भाषाई, संस्कृतिक और सामाजिक समूह होना।
5. माइग्रेशन (प्रवासन) किसी नगर या देश से लोगों को दूसरे नगरों या देशों में जाना।
6. इमीग्रेशन (उत्प्राव) बाहर के लोगों का रोजगार की तलाश में आना।

### 8.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### 8.20 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0 दूबे: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था
2. एस0एम0सईद0 : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था
3. जाकिर हुसैन : राजनीतिक सिद्धान्त

### 8.21 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

### 8.22 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में राजनीतिक संस्कृति के विविध पक्षों की विवेचना कीजिये।

---

## इकाई 10: नक्सलवाद

---

इकाई की संरचना

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- 10.3 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- 10.4 हिंसा और संघर्ष आधार
- 10.5 नक्सली आंदोलन: राजनीतिक और बौद्धिक संदर्भ
  - 10.5.1 पहला चरण
  - 10.5.2 दूसरा चरण
  - 10.5.3 तीसरा चरण
- 10.6 नक्सली संगठन: प्यूपिल्स वार ग्रुप
- 10.7 माओस्ट कम्युनिस्ट सेन्टर
- 10.8 भारतीय साम्यवादी पार्टी (माओवादी)
- 10.9 आठ ऐतिहासिक दस्तावेज
- 10.10 नक्सली आंदोलन के कारण
- 10.11 नक्सलवाद और आतंकवाद
- 10.12 सारांश
- 10.13 शब्दावली
- 10.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 10.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 10.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 10.17 निबंधात्मक प्रश्न

### 10.1 प्रस्तावना

आधुनिक भारत में नक्सलवाद एक ऐतिहासिक समस्या है जिसने देश को हिलाकर रख दिया है। 2010 में इस समस्या ने अधिक उग्र रूप धारण कर लिया जब सैकड़ों पुलिसकर्मी, नक्सलवादियों के द्वारा मारे गये। भारतीय शासन नक्सलवादी हिंसा को भारत की अखण्डता के लिए एक चुनौती मानता है। वे हिंसा करते हैं, पुलो और रेलट्रैकों को उडाते है, विध्वंस करते है, धन उगाही करते है, भू-स्वामियों पर हमला करते हैं जो गैर-कानूनी हैं या अनैतिक है। कभी वे स्वयं को साम्यवादी कहते है, कभी नक्सलवादी और कभी माओवादी। भारतीय व्यवस्था को बदलना उनका लक्ष्य है, क्रान्ति उनका नारा है, हिंसा उनका उपकरण है। भारत इनको उग्रवादी कहता है, लडाकू (मिलिटेन्ट) कहता है लेकिन आतंकवादी कहने से हिचकता है। तर्क यह है कि यह आम निर्दोश लोगों को नहीं मारते। नक्सलवाद पर बीसियों किताबें लिखी गयी हैं उपन्यास छपे है। कही न कही इन पुस्तकोंमें नक्सलवादियों के प्रति सहानुभूति दिखाई गयी है। जिससे उनका मनोबल उंचा होता है। उदाहरण के लिए पुलिस द्वारा मारे गये माओवादी नेता आजाद और उमाकांत महतों के प्रति बुद्धिजीवियों और पत्रकारों की सहानुभूति एक उदाहरण है। उदाहरण के लिए महास्वेता देवी का उपन्यास “हजार चुराशीरमा” सप्रेम मजूमदार के उपन्यास “कलबेला” और “कालपुरुश” या सखो घोश का “कोबीतार मुहुरतों” ऐसे उपन्यास हैं जो पुलिस के निर्दोश लोगों पर अत्याचार से भरे पढे है। पश्चिम बंगाल में सहानुभूति पूरी तरह माओवादियों को आतंकवादी मानने को तैयार नहीं है। उनके अनुसार “आतंकवादी लोगों के विरुद्ध हथियारबंद है, जबकि माओवादी राज्य के विरुद्ध है। मानवाधिकार कार्यकर्ता स्वामी अग्निवेश ने नक्सलियों और सरकार के बीच नक्सली नेता चैराकुरी राजकुमार अका, आजाद के माध्यम से बात करना शुरू की लेकिन जब पुलिस ने एक मुठभेद में आजाद को मार डाला तो स्वामी अग्निवेश हताश हो गये। उन्होंने आजाद की मौत को शान्ति पहल के लिए बड़ा आघात बताया। वह मुठभेद की न्यायिक जांच चाहते हैं। वह मानते हैं कि संरचनात्मक हिंसा माओवादी हिंसा से ज्यादा खतरनाक है। वह भ्रष्टाचार को हिंसा मानते है। वह जातिवादी टकराव को भारत की वास्तविक हिंसा मानते है। उन्होंने कहा “माओवादी हत्यारे नहीं है, माओवादी हिंसा राज्य हिंसा के विरुद्ध एक प्रतिशोध है। यदि उनके विरुद्ध बल का प्रयोग होगा तो भारत में गृह - युद्ध छिड़ जायेगा”।

### 10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के उपरान्त आप-

- नक्सलवाद का विश्लेषण उसके ऐतिहासिक संदर्भ में को जान पायेंगे।
- नक्सली आंदोलन के चरण, उनका आधार और रणनीति।

- इसके बौद्धिक और राजनीतिक स्वरूप का और नेतृत्व का अध्ययन।
- नक्सली संगठनों का विश्लेषण।
- नक्सली विचारधारा का विस्तार से अध्ययन।
- नक्सली आंदालनों के कारण और उसके स्वरूप का विश्लेषण।

### 10.3 एतिहासिक पृष्ठभूमि

नक्सलवाद शब्द की उत्पत्ति पश्चिमी बंगाल के एक गांव नक्सलबाड़ी से हुई है। यही से एक आंदोलन आरम्भ हुआ जो नक्सलवाद कहलाया। हुआ यह कि कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (मार्क्सवादी) से विद्रोह करके चारू मजूमदार, कानू सान्याल तथा जांगल सान्याल ने 1967 में एक हिंसात्मक विद्रोह छेड़ा। 18 मई 1967 को सिलिगुडी किसान सभा ने जिसका अध्यक्ष जांगल था भूमिहीनों में भूमि वितरण के लिए हथियार बंद संघर्ष का ऐलान किया। उसी सप्ताह एक बटाईदार पर नक्सलबाड़ी के समीप भूमि स्वामियों के आदमियों ने भूमि विवाद को लेकर हमला कर दिया। 24 मई को जब एक पुलिस टुकड़ी कृषक नेताओं को गिरफ्तार करने आयी तो जांगल सान्याल के नेत्रत्व में आदिवासियों के एक समूह ने घात लगाकर हमला कर दिया। जिसमें तीरों की बौछार से एक पुलिस इंस्पेक्टर और ग्याराह नक्सली मारे गये। इस घटना से संधाल आदिवासियों और निर्धन लोगों को स्थानीय भूस्वामियों के विरुद्ध आंदोलित होने का प्रोत्साहन मिल गया। यहां से नक्सलवाद आरम्भ हो गया।

इस तरह नक्सल, नक्सलाईट या नक्सलवादी कम्युनिस्ट या साम्यवादी लड़ाकू गुटों के लिए एक वंशनीय (जैनेरिक) शब्द है। यह लड़ाकू भारत के विभिन्न क्षेत्रों विशेष रूप से बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल इत्यादि में माओवादी कहलाते हैं। इनके गड़ केरला, उडीसा और आन्ध्र प्रदेश के जिले भी हैं। नक्सली अति-वाम आतिवादि (रेडीकल) साम्यवादी हैं। जिनके विचारों का आधार माओवादी राजनीतिक भावना और विचारधारा है। यह 1967 में भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) से मतभेद होने के कारण अगल हो गये और इन्होंने भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) बना लिया। पहले इनका आंदोलन पश्चिमी बंगाल तक सीमित रहा, बाद में छत्तीसगढ़, उडीसा और मध्यप्रदेश में भारतीय साम्यवादी दल (माओवादी) की सहायता से यह फैल गये।

सन 2009 में नक्सली भारत के 20 राज्यों के 220 जिलों में सक्रीय थे अर्थात देश का 40 प्रतिशत भाग पर उनका कब्जा था। जिन क्षेत्रों में वे क्रियाशील हैं वह रेड कोरीडोर या लाल गलियारा कहलाता है। 92,000 कि०मी० पर उनका नियंत्रण है। 20,000 हथियार बंद और इतने ही कार्यकर्ता

है। उनकी बढ़ती गतिविधियों को देखते हुए प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने उनको भारतीय सुरक्षा के लिए एक गंभीर आंतरिक खतरा बताया है।

1967 में नक्सलियों ने ऑल इण्डिया कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ कम्युनिस्ट रेवोल्यूशनरीज (ए0आई0सी0सी0सी0आर0) का गठन किया, लेकिन बाद में सी0पी0एम0 से अलहदा हो गये। देश के अनेक क्षेत्रों में इनके आंदोलन का आधार हिंसा हो गया। व्यवहारिक रूप से सभी नक्सली गुटों का उद्भव सी0पी0आई0 (एम0एल0) से हुआ है। तब दूसरा गुट प्यूपिल्स वार ग्रुप था जो पूरी तरह क्रान्तिकारी था। बाद में इसका विलय भारतीय साम्यवादी दल (माओवादी) में हो गया। इस समय इनका नेता नागी रेड्डी था।

#### 10.4 हिंसा और संघर्ष आधार

1970 की दहाई में यह आंदोलन अनेक टुकड़ों में बट गया। 1980 तक यह अनुमान लगाया गया कि लगभग 30 नक्सली गुट सक्रिय थे। इनकी सदस्यता लगभग 30,000 थी। 2004 गृह विभाग के अनुमान के अनुसार 9,300 ठोस भूमिगत लड़ाकू थे। जिनके पास 6,500 आधुनिक हथियार थे। विदाल हॉल 2006 के अनुसार इस आंदोलन का आधार 15,000 सक्रिय उग्र हथियार बंद थे। ये भारत के जंगलों के एक बड़े भाग (1/5) पर काबिज थे। इनकी भूमिका गोरिल्लों जैसी है। 160 जिलों में यह सक्रिय है। राँ के अनुसार 2006 में नक्सलियों की संख्या 20,000 थी और यह सब हथियार बंद थे।

आज कुछ नक्सलवादी गुट वैज्ञानिक हो गये क्योंकि वे संसदीय चुनावों में भाग लेते हैं जैसे भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) लेकिन भारतीय साम्यवादी दल (माओवादी) और भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी-लेनिनवादी जनशक्ति) हथियार गोरिल्ला युद्ध में लिस है।

6 अप्रैल 2010 नक्सलियों ने नक्सलवादी आंदोलन के इतिहास का सबसे बड़ा हमला किया। जिसमें 76 सुरक्षाकर्मी मारे गये। यह हमला लगभग 1000 नक्सलियों ने छत्तीसगढ़ के दातेवाड़ा जिले के जंगलों में घात लगाकर सी0आर0पी0एफ0 के जवानों पर किया। 76 मौतों के अतिरिक्त 50 जवान घायल हुए। 17 मई 2010 को दातेवाड़ा-सुखमा सड़क पर एक बस को उड़ा दिया। जिसमें 15 पुलिसवाले और 20 नागरिक मारे गये अपने तीसरे हमले में जो 29 जून को हुआ, छत्तीसगढ़ के नारायणपुर जिले में घात लगाकर सी0आर0पी0एफ0 के 26 जवानों को मार डाला। इससे यह सिद्ध होता है कि हाल के दिनों में नक्सलवाद ने एक तरह से राज्य के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया है।

नक्सलवाद का नेतृत्व

जैसा कि लिखा जा चुका है नक्सलीय आंदोलन के सबसे प्रभावशाली नेता या गुरु चारू मजूमदार, कानू सानियाल और जांगल संधाल, (कहीं –कहीं जगत संधाल लिखा है) थे। इन नेताओं के नेतृत्व

में सीपीआई (एमएल) आंदोलन 1971 में अपने शिखर पर पहुंच गया। लगभग 3,650 हिंसात्मक घटनाएं घटीं जिनसे बिहार, आन्ध्र प्रदेश, केरला, तमिलनाडु, पंजाब और उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्र हिल उठे। लेकिन जब पुलिस तथा सेना ने शिकंजा जकड़ा जिसमें हजारों नक्सली गिरफ्तार हुए या मर गये तथा 1972 में मजूमदार की मृत्यु से नक्सलवाद को झटका लगा। केपी सिंह ने अपने एक निबन्ध “दि ट्रेजोक्टरी ऑफ दि मूवमेंट” में लिखा है: यह काल एक अवधारणात्मक निष्कपट नेतृत्व से सम्पन्न था। इसमें मध्य स्तरीय कार्यकर्ता थे। इसकी अपील न केवल वामपंथ और समाज के वंचित वर्गों के लिए थी, बल्कि एक बड़ी संख्या में बुद्धिजीवी और छात्र भी इसकी ओर आकर्षित हुए और सहानुभूति रखने लगे। इसको चीन जैसे कुछ देशों से मदद भी मिल रही थी।

### 10.5 नक्सली आंदोलन: राजनीतिक और बौद्धिक संदर्भ

#### 10.5.1 पहला चरण

यह कहना सही होगा कि नक्सली आंदोलन वामपंथी राजनीति और इस पर पडने वाले बाह्यिक प्रभावों का परिणाम है। सर्वप्रथम तेलंगाना संघर्ष के संदर्भ में इसको देखा जाता है। तेलंगाना में जुलाई 1948 तक, 2500 गांवों को कम्यूनिस में संगठित किया गया। यह किसान आंदोलन का एक हिस्सा था जिसे तेलंगाना संघर्ष कहा गया। इसी समय प्रसिद्ध आन्ध्राथीसेज अस्तित्व में जिसकी मांग थी कि भारतीय क्रान्ति चीन जन युद्ध के रास्ते पर चलना चाहिए। जून 1948 तक वामपंथी अवधारणात्मक दस्तावेज ‘आन्ध्र लेटर’ सामने आया। जिसने नवीन लोकतंत्र के आधार पर एक क्रान्तिकारी रणनीति बनाने का आह्वान किया।

1964 में सीपीएम सीपीआई से अलहदा हो गयी और चुनावों में भाग लेने को फैसला किया और क्रान्तिकारी नीतियों को अपनाने में हथियार बंध संघर्ष स्थगित करने का तब तक के लिए ऐलान किया जब तक कि देश में क्रान्तिकारी परिस्थितियां परिपक्व न हो जायें।

1965-66 में साम्यवादी नेता चारू मजूमदार ने मार्क्स-लेनिन-माओ के विचारों पर आधारित बहुत से लेख लिखे, जिनको बाद में ऐतिहासिक आठ दस्तावेज कहा गया। जो अनंत: नक्सली आंदोलन का आधार बना।

इसी दौरान पहला स्वतंत्रता संगठन तेलगु कवि श्री श्री की अध्यक्षता में अस्तित्व में आया। लेकिन भारत-चीन युद्ध के दौरान हजारों साम्यवादियों को जेलों में ठूस दिया गया।

1967 में सीपीएम ने चुनावों में भाग लिया और बंगाल कांग्रेस के साथ मिलकर पश्चिमी बंगाल में एक संयुक्त मोर्चा बनाया। इससे पार्टी में विरोध की लहर दौड़ गयी। चारू मजूमदार ने सीपीएम पर विश्वासघात का आरोप लगाकर पार्टी छोड़ दी।

25 मई, 1967 को चारू मजूमदार के नेतृत्व में विद्रोही गुट ने पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले के नक्सलबाडी में किसानों का उग्र आंदोलन आरम्भ हुआ। कारण था कि एक आदिवासी युवक पर जिसके पास खेत जोतने का न्यायिक आदेश था जमींदार के गुंडों ने हमला कर दिया। आदिवासियों ने बदले में अपनी भूमि को जबरदस्ती छीनना शुरू कर दिया। सीपीआई (एम) द्वारा समर्थित संयुक्त मोर्चे ने आदिवासियों के आंदोलन को कुचलना शुरू किया। 72 दिनों तक यह विद्रोह चला जिसमें एक पुलिस सब इंस्पेक्टर और 11 आदिवासी मारे गये। केन्द्र में कांग्रेस ने इस दमन का समर्थन किया। घटना की गूंज पूरे देश में हुई और नक्सली आंदोलन ने जन्म ले लिया।

नक्सलवाद की विचारधारा देखते ही देखते पूरे भारत में फैल गयी। पूरे पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश और बिहार में लोगों ने संघर्ष में भाग लेना आरम्भ किया।

आंदोलन का बौद्धिक स्तर भी सामने आया जब “लिबरेशन” और देशभक्ति, बंगाली तथा लोकयुद्ध (हिन्दी) जैसी पत्रिकाएं सामने आयी।

### 10.5.2 दूसरा चरण

1967 में तमिलनाडु, केरला, उत्तर प्रदेश, बिहार, कर्नाटका, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल में कामरेडो ने ऑल इण्डिया कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ रेवोल्यूशनरीज की स्थापना सीपीआई (एम) के अन्तर्गत की। 14 मई 1968 इसका नाम ऑल इण्डिया कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ कम्युनिस्ट रेवोल्यूशनरीज पडा। इसके संयोजक एस0राय0 चौधरी थे। इस नयी संस्था ने चुनाव के बहिष्कार का आह्वान किया। बाद में इस कमेटी में विभाजन हो गया।

22 अप्रैल 1969 को नई कमेटी के एक निर्णय के अनुसार एक नयी पार्टी बनायी गयी। जिसका नाम सीपीआई (एम0एल0) पडा। लेनिन के विचार इसके प्रेरणा स्रोत थे। चारू मजूमदार इस पार्टी के केन्द्रीय दल के सचिव चुने गये 1 मई 1969 को पार्टी के दूसरे बड़े नेता कामरेड कानू सान्याल ने कलकत्ते की शहीद मीनार मैदान में पार्टी की घोषणा के लिए एक बड़ी मीटिंग की। सीपीआई (एम) ने इस मीटिंग में गड़ बड़ फैलाने की कोशिश की परिणाम स्वरूप सीपीआई (एम) और सीपीआई (एम0एल0) में पहली हिंसात्मक झड़प हुई।

इस बीच देवरा-गोपीवल्लभपुरा (पश्चिमी बंगाल), मूसल (बिहार, लखीमपुरखीरी, उत्तर प्रदेश) तथा श्रीकाकुलम (आन्ध्र प्रदेश) में गौरिल्ला जोन बन गये।

26-27 मई, 1969 को आंध्र पुलिस ने कामरेड पंचादरी कृष्णामूर्ति और छः अन्य क्रान्तिकारियों को मार डाला। यहां से श्री काकुलम संघर्ष की लहर पूरे आंध्र में फैल गयी। 20 अक्टूबर को माओवादी साम्यवादी केन्द्र की स्थापना कनहीं चटर्जी के नेतृत्व में हुई जिसने नक्सलवादी आंदोलन को समर्थन दिया।

27 अप्रैल, 1970 को देशभारती प्रकाशन के दफ्तर पर छापा मारा गया। सीपीआई (एमएल) भूमिगत हो गया। 11 मई को पहला सीपीआई (एमएल) की कांग्रेस कलकत्ते में हुई। यह भूमिगत थी। कामरेड, चारू मजूमदार इसके सह सचिव चुने गये। 10 जुलाई को कामरेड बेमपतापु, सत्यनारायण और अदिबतिया कैलासम, जो श्री काकुलम विद्रोह के नेता थे, पुलिस द्वारा मार डाले गये। लेकिन श्री काकूलम का आंदोलन 1975 तक चलता रहा। इस पूरे आंदोलन को साहित्यकारों और कलाकारों का समर्थन मिलता रहा।

दूसरी ओर बांग्लादेश युद्ध के दौरान सेना ने पश्चिमी बंगाल में नक्सली आंदोलन को कुचलने का पूरा प्रयास किया। वीर भूमि का विद्रोह आंदोलन की चरम सीमा थी।

जुलाई 1972 में चारू मजूमदार को कलकत्ते में गिरफ्तार कर लिया गया और उनकी लाल बाजार थाने की हवालात में 28 जुलाई को मृत्यु हो गयी। क्रान्तिकारी आंदोलन को मजूमदार की मृत्यु से बड़ा धक्का लगा। सीपीआई (एमएल) की केन्द्रीय सत्ता छिन्न-भिन्न हो गयी।

संघर्ष का अंत नहीं हुआ। बौद्धिक स्तर पर आंदोलन नहीं रुका। अगस्त 1972 में पुकार राजनीतिक पत्रिका आन्ध्र प्रदेश से निकाली गयी।

1973 में गुरिल्ला संघर्ष फिर आरम्भ हो गया। इस समय यह केन्द्रीय बिहार और तेलंगाना में चला। मार्च में आन्ध्र प्रदेश सिविल लिबर्टीज को श्री श्री के नेतृत्व में स्थापना हुई।

12 अक्टूबर 1974 में आन्ध्र प्रदेश में एक अतिवादी छात्र संघ की स्थापना हुई। आपात काल में यह पुलिस के जुल्म का शिकार हुआ परन्तु इसका अंत नहीं हुआ।

1975 में आपात काल की घोषणा हुई। पुलिस ने मौके का फायदा उठाकर वामपंथी आंदोलन को कुचलने का पूरी तरह प्रयास किया। सितम्बर में सैन्ट्रल ऑर्गनाइजिंग कमेटी ने अपना आंदोलन वापस ले लिया और एक राजनीति के तहत रोड टू रेव्यूल्यूशन का दस्तावेज प्रस्तुत किया लेकिन भोजपुर और नक्सलबाडी में खूनी संघर्ष जारी रहा।

फरवरी 1977 में आन्ध्र प्रदेश में क्रान्तिकारियों ने तेलंगाना रीजनल काँग्रेस की स्थापना करके करीम नगर और आदिलाबाद किसान आंदोलन के बीज बोए। तय यह भी किया गया कि नयी भर्ती के लिए राजनीतिक कक्षाएं चलायी जाएं और टुकड़ियों को हथियार बंद संघर्ष के लिए जंगलो में भेजा जाये।

बाद में यह तय किया गया कि गुरिल्ला कार्यवाही को कुछ सीमित किया जाये और जनआंदोलन आरम्भ किया जाये। परिणाम स्वरूप 7 सितम्बर को प्रसिद्ध जगीतियाल मार्च का आन्ध्र प्रदेश में आयोजन किया गया। जिसमें हजारों लोगों ने भाग लिया।



1979 से लेकर 1988 एम0सी0सी0 ने अपना ध्यान बिहार में केन्द्रित किया। बिहार-बंगाल स्पेशल ऐरिया कमेटी स्थापित की गयी।

1980 में कोण्डापली, सीतारमैया ने आंध्र प्रदेश में प्यूपिल्स वार ग्रुप की स्थापना की। आरम्भ में उसका लक्ष्य जन आंदोलन खड़ा करना था। यह आंदोलन केन्द्रीय बिहार में फैल गया।

### 10.5.3 तीसरा चरण

1981 में पहली राज्यव्यापी रैली बिहार प्रदेश किसान सभा के झण्डे के तले पटना में हुई। इसने राज्य में एक नये राजनीतिक जन आंदोलन का दौर आरम्भ किया। 1985 तक आंदोलन में आसमिया, पिछड़े और दलितों को मिलाने का प्रयास किया गया। आपरेशन ब्लू स्टार के बाद पंजाब के सिक्खों की भावनाओं को देखते हुए उन्हें आंदोलन से जोड़ने का प्रयास किया गया।

आदिवासियों की स्वायत्ता के लिए प्यूपिल्स डेमोक्रेटिक फ्रन्ट आसाम के करबी आगलंग में अस्तित्व में आया। इसने विधान सभा की पहली सीट जीते।

इस समय दिल्ली में जन संस्कृतिमंच की स्थापना की गयी। उद्देश्य बौद्धिक विकास था।

1986 में बिहार सरकार ने पी0डब्लू0जी0 और एम0सी0सी0 पर पाबंदी लगा दी।

इसी वर्ष आंदोलन से महिलाओं को जोड़ने का भी प्रयास किया गया और कलकत्ते में राष्ट्रीय महिला अधिवेशन बुलाया गया ताकि क्रान्तिकारी महिलाओं से महिला आंदोलन को जोड़ा जा सके।

1988 में सी0पी0आई0 (एम0एल) की स्थापना यतेन्द्र कुमार ने की।

नवम्बर 1989 में भू-स्वामियों ने भोजपुर जिले में 12 वामपंथी समर्थकों को मार डाला। नवम्बर में ही सी0पी0आई0 का पहला चुनावी सफलता मिली जब आरा से पहला नक्सली सदस्य संसद पहुंचा। आंदोलन का यह एक नया मोड़ था। आई0पी0एफ0 के अन्तर्गत यह चुनाव लड़ा गया था।

1999 में आई0पी0एल0 की पहली अखिल भारतीय रैली दिल्ली में निकली जिसमें लाखों किसानों ने भाग लिया।

1992 में आंध्र प्रदेश पी0डब्लू0जी0 पर पाबंदी लगा दी गयी।

1990 में छात्र स्तर पर भी काम किया गया। इलाहाबाद में आल इण्डिया स्टूडेंट्स एसोसिएशन की स्थापना की गयी। 1993 में एसोसिएशन ने इलाहाबाद, वाराणसी और नैनीताल विश्वविद्यालयों के

चुनावों में जीत हासिल की। कुछ समय बाद उसका जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की छात्र संघ पर भी कब्जा हो गया।

1993 से 1996 तक साम्यवादी संगठनों के बनने और टूटने की कहानी है। इसी दौरान नक्सली आंदोलन दबा रहा।

1999 में नक्सलियों ने हमले तेज कर दिये। लगभग 40 उच्च जाति के लोगों को मार डाला गया। पी0डी0जी0 के तीन बड़े नेता भी मारे गये। 16 नवम्बर को मध्य प्रदेश के ट्रांसपोर्ट मंत्री लिखीराम कारवे को बदले में मार डाला गया।

2000 में बदले की कार्यवाहियां तेज हो गयीं। पी0ड0जी0 ने तेलगुदेशम पार्टी के सांसद सुखेन्द्र रेड्डी का घर उड़ा दिया। फरवरी में मध्यप्रदेश में पुलिस की एक गाडी को उड़ाकर 23 पुलिसकर्मियों को मार डाला। इसी माह आन्ध्र प्रदेश में दस लोगों को मार डाला। प्यूपिल्स गोरिल्ला सेना का निर्माण पुलिस को मारने के लिए किया गया।

2001 में सी0पी0आई (एम0एल0) ने “नक्सलवादी साहस” को पुर्नजाग्रित करने का आह्वान किया। इसी वर्ष दक्षिणी एशिया में नक्सली आंदोलन फैलाने के लिए कोआर्डिनेशनल कमेटी ऑफ माओस्ति पार्टीज एण्ड ऑर्गनाइजेशन ऑफ साउथ एशिया का पहला अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाया गया।

2002 से लेकर जनवरी 2010 का नक्सली इतिहास पूरी तरह रक्त रंजित है। इसका वर्णन पिछले पन्नों में किया जा चुका है।

### 10.6 नक्सली संगठन: प्यूपिल्स वार ग्रुप

1974 तक बंगाल और बिहार में नक्सली आंदोलन पूरी तरह कुचल दिया गया। आपात काल में हजारों नक्सलियों को जेल में डाल दिया गया, उनको भी जिन पर थोड़ा सा संदेह था, पर वे कसूरवार नहीं थे। नतीजा यह हुआ कि ज्यों ही आपातकाल समाप्त हुआ नक्सली आंदोलन ने फिर करवट ली। कोन्डापल्ली सीथारम्मया के नेतृत्व में आंध्र प्रदेश में एक अराजक प्यूपिल्स वार ग्रुप (पी0वी0जी0) और बिहार में माओस्ति कम्यूनिस्ट सेन्टर तथा यूनिटी आर्गनाइजेशन अस्तित्व में आ गये। पहले तो सी0पी0आई0 (एम0एल0) लिब्रेशन ने संसदीय व्यवस्था में काम करने का इरादा किया। लेकिन बाद में हथियार बंद संघर्ष में कूदने में हिचकिचाहट नहीं की। इन संगठनों को एक विचारात्मक आधार कोन्डापल्ली ने दिया। उसने लिखा “.....एक देश जहां लोकतांत्रिक संस्थाएं कमजोर और संकुचित बुनियादों पर आधारित हो, जहां छोटी विजयों और आंशिक सुधारों को एक बड़े सैनिक बल से प्राप्त किया जाये और बनाये रखा जाये”, वहां हथियारबंद संघर्ष अनिवार्य है। इस तरह पी0डब्लू0जी0 की विचारधारा आज के नक्सलियों की विचारधारा है।

प्यूपिल्स वार ग्रुप का उदय का कारण था सीपीआई (एमएल) लिबरेशन का लोकतांत्रिक चुनावों में भाग लेना। ऐसा लोकतांत्रिक कदम चारू मजूमदार के विचारों के विरुद्ध था। वह चाहता था कि समान्ती सेना के विरुद्ध एक सत्त जन युद्ध हो। राज्य के हमलो का जवाब वैधानिक सुधारवादी नीतियों से नहीं दिया जा सकता “ऐसा करना शासकीय वर्ग के चमचों” में बदलना होगा।

पहले कुछ वर्षों तक पीडब्लूजी आंध्र प्रदेश तक सीमित रहा जबकि सीपीआई (एमएल) का बिहार पर प्रभाव रहा। 1982 में सीपीआई (एमएल) पार्टी युनिटी अस्तित्व में आ गयी और इस तरह एक आंतरिक संघर्ष का खूनी खेल आरंभ हो गया। अगस्त 1998 में पार्टी युनिटी और पीडब्लूजी ने मिलकर यूनाईटेड पार्टी बना ली और एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया जिसका शीर्षक था राज्य के विरुद्ध हथियार बंद जन-संघर्ष। लेकिन पार्टी की असफलता ने पीडब्लूजी को बढ़ने का और मौका दिया। वह आंध्र प्रदेश से निकलकर बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ तक फैल गयी। आज जो खूनी खेल चल रहा है उसमें पीडब्लूजी का बड़ा हाथ है।

### 10.7 माओस्टि कम्युनिस्ट सेन्टर

माओस्टि कम्युनिस्ट सेन्टर या माओवादी साम्यवादी केन्द्र (एमसीसी) नक्सली आंदोलन का एक दूसरा खोफनाक चहरा है। इसका निर्माण दक्षिण देश के रूप में 1969 में हुआ जिसका लक्ष्य राज्य के अभिकर्ताओं के विरुद्ध हथियार बंद संघर्ष करना था। 2003 में इसका नाम एमसीसी इण्डिया पडा। एमसीसी माओत्से तुंग की शपथ लेकर काम करती है, जिसका संदेश था गुरिल्ला जन-युद्ध ताकि “एक शक्तिशाली जन सेना और अर्धजन सेना का निर्माण हो ताकि ग्रामीणीय स्तर पर एक आत्म निर्भर शक्तिशाली और भरोसेमंद आधार क्षेत्र बन सके, जिसके माध्यम से धीरे-धीरे शहरी क्षेत्रों की घेराबंदी की जाये, ग्रामीणीय क्षेत्रों को मुक्त कराकर और अंत में शहरों में कब्जा जमाया जाये और इस तरह निर्णायक रूप से प्रतिक्रियावादियों की राज्य शक्ति को नष्ट कर दिया जाये।” एमसीसी और पीडब्लूजी की विचारधारा में कोईविशेषअंतर नहीं है। यदि कोई अंतर है तो वह है कार्यशैली की तीव्रता का। दोनों एक दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश में लगे हैं।

### 10.8 भारतीय साम्यवादी पार्टी (माओवादी)

2004 की रणनीति से माओवादियों या नक्सलियों के लक्ष्य का पता लगता है। 2004 में देशव्यापी क्रान्तिकारी संगठन की स्थापना के लिए नक्सली आंदोलन ने एक बड़ी छलांग लगाई। इस वर्ष पीडब्लूजी और एमसीसी ने गनपंथी और किशन जी के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (माओवादी) का मिलकर गठन किया। यह संगठनात्मक राजनीति के संघर्ष का

नतीजा था। यहां स्वीकार करना होगा कि नक्सली आंदोलन का इतिहास सहमति और विभाजन का इतिहास है जिसका आधार विचारों में टकराव है। सीपीआई (एम) का मेनीफेस्टो एक समझौते का परिणाम है। इस संगठन का निशाना दो बातें हैं- अनौचित्यपूर्ण कृषि नीतियां और राज्य द्वारा भूमि का पुर्नवितरण और दूसरे वह व्यवस्था जिसे माओवादी अर्ध-उपनिवेशवादी, अर्ध-सामन्ती और महत्वांक्षी नौकर शाही पूंजीवादी व्यवस्था कहते हैं। सीपीआई (एम) का रख रखाव बहुत कुछ सीमा तक सुधारवादी था लेकिन लोगों ने इसे अस्वीकार कर दिया। आम नक्सली को क्रान्तिकारी और हिंसात्मक तरीके से लक्ष्य की प्राप्ति सरल नजर आती थी।

पीडब्लूजी और एमसीसी के गठजोड़ के बाद सीपीआई (एम) ने एक ऐसे ठोस क्रान्तिकारी क्षेत्र (काम्पैक्ट रेवोल्यूशनरी जोन सीआरजेड) का नक्शा खींचा जो नेपाल से बिहार होता हुआ छत्तीसगढ़ से आंध्र प्रदेश तक जाता है। इसको लाल गलियारा (रेड जोन) का नाम दिया गया है। इसका लक्ष्य था भारत को दो आधे-आधे भागों में बांटना और उन क्षेत्रों पर कब्जा कर लेना जो संसाधनों से सम्पन्न हैं, डा0 रजत कजूर के अनुसार “यद्यपि नक्सली गुटों के निशाने, लडाई के तरीके, क्षमताएं और इनका चरित्र समय-समय पर बदल है। लेकिन नेतृत्व की विचारधारा अडिग है।”

नक्सली विचारधारा

जैसा कि लिखा जा चुका है कि प्यूपिल्स वार ग्रुप (पीडब्लूजी) की विचारधारा नक्सली विचारधारा का आधार है। जिसका स्रोत चारूमजूमदार के लेख है। इन लेखों का संग्रह करके मजूमदार ने हिस्टॉरिक एट डोक्यूमेंट्स का नाम दिया जो नक्सली विचारधारा का आधार बनी। पीडब्लूजी इसी विचारधारा के अनुसार काम करती है। यहां हम पीडब्लूजी के एक पार्टी अभिलेख (दस्तावेज) ‘पार्ट आफ प्यूपिल्स वार इन इण्डिया-आवर टास्क’ के एक उद्धृत को प्रस्तुत करेंगे जो माओवादियों या नक्सलियों का लक्ष्य, उद्देश्य और रणनीति को उजागर करता है। यह दस्तावेज 1992 में जारी किया गया, जिसका उदाहरण इस प्रकार है। “हमारे दल के प्रोग्राम ने यह घोषित किया कि भारत एक लम्बा-चौड़ा, अर्ध-उपनिवेशवादी और अर्ध-सामन्ती देश है। जिसमें लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गांव में रहती है। यह बड़े बुजुआई, बड़े भू-स्वामियों से जिनका झुकाव साम्राज्यवाद की ओर है, शासित होता है। साम्राज्यवाद, सामान्तवाद और नौकरशाह-पूंजीवाद के मध्य गठजोड़ एक तरफ और दूसरी ओर जनता का जनसमूह हमारे देश में मौलिक अन्तर्विरोध है। नवीन लोकतांत्रिक क्रान्ति और कामगारों, किसानों, मध्य वर्गों और राष्ट्रीय बुजुआईयों की जन लोकतांत्रिक तानाशाही की स्थापना, हमारे लोगों को सभी प्रकार के शोषण और प्रतिक्रियावादी शासकीय वर्गों की तानाशाही से मुक्ति दिलाना और हमारे देश में समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना करना, हमारे दल का अंतिम लक्ष्य है। हथियार बंद कृषक क्रान्ति के आधार पर जन युद्ध एक मात्र रास्ता है। जन लोकतंत्र को प्राप्त करने का अर्थात् हमारे देश में नया लोकतंत्र।”

उक्त अध्ययन से जो निष्कर्ष निकलता है वह इस प्रकार है:-

1. नक्सलियों के अनुसार भारत एक अर्ध-उपनिवेशवादी और अर्ध-समान्ती देश है।
2. यह बड़े बुर्जुआई और भू-स्वामियों से शासित होता है। जिनका झुकाव साम्राज्यवाद की ओर है।
3. साम्राज्यवाद, सामंतवाद, नौकरशाहों तथा पूंजीपतियों के मध्य गठजोड़ है।
4. दूसरी ओर लोगों का जन समूह है।
5. नवीन लोकतांत्रिक क्रान्ति के माध्यम से परिवर्तन लाया जा सकता है।
6. लक्ष्य कामगारों, किसानों, मध्य वर्गों और राष्ट्रीय बुर्जुआईयों की लोकतांत्रिक तानाशाही की स्थापना करना है।
7. समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना अंतिम लक्ष्य है।
8. हथियार बंद कृषक क्रान्ति पर आधारित जनयुद्ध (प्यूपिल्स वार) लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है।
9. यही नये लोकतंत्र की अवधारणा है।

### 10.9 आठ ऐतिहासिक दस्तावेज

जैसा कि लिखा जा चुका है चारूमजूमदार नक्सलियों का सिद्धांतकार था। उसकी विचारधारा उसके द्वारा प्रतिपादित “ऐतिहासिक आठ दस्तावेजों” में मिलती है। नक्सली आंदोलन को समझने के लिए इन दस्तावेजों का अध्ययन जरूरी है। देखें वेबसाइट इंटरनेट पर ;

इन दस्तावेजों का सार इस प्रकार है:-

1. चारू मजूमदार का मानना था कि मौजूदा परिस्थितियों में सीपीआई (एम) ने मार्क्स लेनिन का रास्ता छोड़कर समझौते और समन्वय का रास्ता अपनाया। मजूमदार ने इसे “संशोधनवाद” (रिवीज़निज़्म) कहा और आह्वान किया कि किसानों का आंदोलन संशोधनवाद के विरुद्ध होना चाहिए। मजूमदार के अनुसार मार्क्सवादी प्रतिक्रियावादियों की पंक्ति में आंकड़े हुए हैं। इन्होंने वर्ग संघर्ष के स्थान पर सहयोग का रास्ता अपनाया है। यह इनका अर्थवाद है। माओ को उद्धृत करते हुए उसने लिखा जो “निष्पक्ष रहते हैं वे अवसरवाद का मार्ग अपनाते हैं।” यही संशोधनवादी है।
2. हमने जन लोकतांत्रिक क्रान्ति का प्रोग्राम अपनाया है जिसका उद्देश्य किसानों के हित में भूमि सुधार करना है। इसके लिए हम सामन्ती वर्गों से जमीन छीननी होगी और उसे भूमिहीन किसानों और गरीबों में बांटना होगा।

3. बिना बलिदान के कोई संघर्ष नहीं हो सकता। 'माओं ने हमको सिखाया है कि जहां संघर्ष है वहां बलिदान है। आरंभ में प्रतिक्रियावादियों की ताकत ज्यादा होगी। बाद में वे पराजित हो जायेंगे।'

4. नौकरशाही की भूमिका बड़ी गंदी होती है। यदि कुछ वैधानिक सुधार किये भी जाये और नौकरशाही पर क्रयान्वन को छोड़ दिया जाये तो किसानों को कुछ नहीं मिलेगा। ऐसा लेनिन का विश्वास था।

5. कृषक क्रान्ति लाने से पूर्व राज्य की शान्ति को नष्ट करना होगा। यह कैसे होगा, इसके लिए मजूमदार ने लिखा "भू-स्वामियों से हथियार छीनने होंगे, पहले उनके घरों को जलाना होगा। अचानक हमला करके सरकारी हथियारों को छीनना होगा। यही पहला हथियारबंद संघर्ष है।

6. वर्ग विश्लेषण जरूरी है। बिना वर्ग विश्लेषण के वर्ग संघर्ष नहीं होगा। केवल कमजोर किसान-मजदूर क्रान्तिकारी हो सकता है। मध्यवर्ग नहीं हो सकता।

7. हथियार बंद संघर्ष की राजनीति जरूरी है। बन्दूके छीनना इसका एक भाग है। माओं की संस्कृतिक क्रान्ति का यही लक्ष्य था। मजूमदार मिज़ों और नागा के मुक्ति आंदोलन को उचित मानता है।

8. मजूमदार के अनुसार छात्रों और युवकों को आगे लाना चाहिए। उसके बाद किसान आंदोलन चले। ऐसा बिहार और आन्ध्र प्रदेश में हुआ। "शासन दमन करेगा और हमें दमन का सामना करना होगा।" सामना सकारात्मक होना चाहिए। सत्याग्रह नकारात्मक है। ट्रेड संघ तथा कृषक सभाएं समझौता करती हैं।

9. घृणित नौकरशाही और पुलिस पर हमला जरूरी है। रेलवे स्टेशनों, पुलिस स्टेशनों, सरकारी भवनों को मत जलाओ। ट्रेनों, बसों, ट्रकों को मत जलाओ। इनका कोई अपराध नहीं है।

10. साम्राज्यवादी युद्ध को गृह युद्ध में परिवर्तित करो।

11. आधुनिक संशोधनवाद का जिसका अगुआ रूस है विरोध करो। राजनीति शक्ति की प्राप्ति की ओर मत भागो।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मजूमदार के विचारों का आधार मार्क्सवादी-लेनिनवादी-माओवादी विचारधारा है। यह नौकरशाही, पूंजीपतियों, भू-स्वामियों के शासन को उखाड़ फेंकने पर बल देता है। इसके स्थान पर प्रोलतारी तानाशाही की स्थापना करना चाहता है। समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना अंतिम लक्ष्य है।

#### 10.10 नक्सली आंदोलन के कारण

आदिवासियों तथा दलितों का समग्र विकास न होना, भूमिहीन किसानों की बदहाली, भू-स्वामियों द्वारा शोषण, खनिज सम्पदा पर ठेकेदारों और पूंजीपतियों का नियंत्रण पुलिस का जुल्म नक्सली आंदोलन के मुख्य कारण है।

भारत में आदिवासियों की संख्या लगभग 8 प्रतिशत है। यह चार क्षेत्रों-अरुणाचल प्रदेश, नागालैण्ड, मध्य प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पश्चिमी बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, उत्तराखण्ड इत्यादि में केन्द्रित है। यह अधिकतर जंगलो और पहाड़ी इलाकों में रहते है। यह जंगल के उत्पादन या कृषि पर निर्भर है। अधिकांश भूमिहीन है। राजपूत, मराठा तथा दूसरे शक्तिशाली वर्गों ने इन्हें अपने क्षेत्र छोड़ने को मजबूर किया है। इनसे जमीने छीनी हैं जो इन्हें इधर-उधर भटकने पर मजबूर करते है। आदिवासी पूरी तरह ऋण में फंसे रहते है। जिसकी वजह से इन्हें बंधुआ मजदूर बनना पडता है।

यही स्थिति भूमिहीन किसानों की है। वे न केवल निर्धन हैं बल्कि ऋण ग्रस्त है। शक्तिशाली भू-स्वामी उनका शोषण करते हैं और उनको बंधुआ मजदूर बना कर रखते है।

बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ इत्यादि क्षेत्र प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न है। यहां खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में है। खनिज पदार्थों की खानों पर ठेकेदारों का नियंत्रण है जिसका लाभ पूंजीपति या केन्द्रीय सराकर उठाती है। स्थानीय लोगों को इनका कोई लाभ नहीं मिलता। आक्रोश का यह एक बड़ा कारण है।

पुलिस का अत्याचार जग जाहिर है। पुलिस ठेकेदारों, जमींदारों, ऋणदाताओं और पूंजीपतियों का साथ देती है। भूमिहीन किसानों पर जुल्म डालती है और उनकी महिआलों का अपमान करती है।

नौकरशाही लापरवाह है। योजनाओं के क्रयान्वन में ढील है। इस तरह भूस्वामी-ठेकेदार-पुलिस-नौकरशाही का गठजोड़ लोगों को आंदोलित करता है।

### 10.11 नक्सलवाद और आतंकवाद

अक्सर यह सवाल उठता है कि अपनी हिंसात्मक कार्यवाहियों के कारण क्या नक्सलियों को आतंकवादियों की श्रेणी में रेखा जा सकता है? नेपाली माओवादियों के बारे में कहा जाता है कि वे राजतंत्र के विरुद्ध युद्धरत थे। इसलिए उनको आतंकवादी नहीं कहा जा सकता। नेपाल के माओवादियों के ऊपर बनाई फिल्म “फ्लेमस ऑफ दि स्नो” का यही सार है। जहां तक भारतीय माओवादियों या नक्सलियों का सवाल है, उनका मानना है कि वे प्राकृतिक सम्पदा की लूट करने वालों के खिलाफ लड़ रहे है। उनकी सेना में लगभग 40 प्रतिशत महिलाएं है। उनके संघर्ष का

आधार विचारात्मक हैं और उनके लक्ष्य को प्राप्त करने का आधार संघर्ष और हिंसा है, जो एक लोकतांत्रिक देश में कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

गुप्त एजेंसियों की रिपोर्ट के अनुसार एम0सी0सी0 और पी0डब्लू0जी0 का सम्पर्क एल0टी0टी0आई0, नेपाली माओवादियों और पाकिस्तान की आई0एस0आई0 से रहा है। यहां से वे हथियार और प्रशिक्षण प्राप्त करते रहे हैं। इसलिए संदेह किया जा सकता है कि वे आतंकियों से मिले हुए हैं। उदाहरण के लिए जिस प्रकार से इन्होंने 28 मई, 2010 को जनानेश्वरी एक्सप्रेस को उड़ाया जिसमें 148 यात्री मारे गये, यह सिद्ध करता है कि यह निर्दोश लोगों को भी मारने से नहीं चूकते जो आतंकियों की प्रवृत्ति है। उमाकान्त महंतो जो जनानेश्वरी काण्ड का दोषी था और जिसका माओवादी समर्थित पी0सी0पी0ए0 (प्यूपिल्स कमेट्री अगेंस्ट पुलिस एट्रासिटीज) से गहरा सम्बन्ध था, 27 अगस्त 2010 को मिदनापुर की एक मुठभेड़ में मारा गया। इसी संगठन से सम्बन्धित असित महंतो और बापी महंतो हैं जिनके सिर पर एक लाख का इनाम है। इनको आतंकी घोषित किया गया है।

तथाकथित बुद्धिजीवी नक्सली आंदोलन को आतंकवादी मानने के लिए तैयार नहीं है। तेलगू के साहित्यकार श्री0श्री0, आर0वी0 शास्त्री, खुतुबा राओ, के0वी0 रामना रेड्डी, चेराबन्दा, राजू वरावरा राओ, सी0 विजयालक्ष्मी इत्यादि ऐसे ही लेखक हैं। इन्होंने विप्लव रचीयता संगम का निर्माण किया है। जिसका अर्थ है क्रान्तिकारी लेखकों की सभा (रेवोल्यूशनरी राइट्स एसोसिएशन आर0डब्लू0ए0) हैदराबाद के अनेक कलाकार सिरिकुलम संघर्ष से प्रभावित हुए हैं और इसके लिए फिल्में बनाने की ओर अग्रसर हैं।

### नक्सली आंदोलन का सार

#### 1. नक्सली कौन हैं ?

नक्सलवादी या नक्सली एक ढीला शब्द है जो उन गुटों को परिभाषित करता है जो भूमिहीन, मजदूरों तथा अन्य जन-जातियों के लिए भू-स्वामियों तथा अन्य के विरुद्ध एक हिंसात्मक संघर्षरत हैं। नक्सलियों का दावा है कि वे वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए दमन और शोषण के विरुद्ध लड़ाई लड़ रहे हैं। जब कि लोकतंत्र में विश्वास करने वाले उन्हें आतंकवादी कहते हैं जो वर्ग संघर्ष के नाम पर लोगों का दमन कर रहे हैं और राष्ट्र में असुरक्षा का वातावरण पैदा कर रहे हैं। जिससे अंततः विकास की प्रक्रिया भी बाधित हो रही है।

#### 2. कितने नक्सली गुट हैं?



विभिन्न नामों के अन्तर्गत बहुत से गुट सक्रिय हैं। भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी लेनिनवादी) एक ऐसा राजनीतिक संगठन है जो नक्सलियों की विचारधारा का प्रचार करता है। इण्डियन प्यूपिल्स फ्रन्ट अगुआ अहम भूमिका अदा करता है। प्यूपिल्स वार और माओस्टि कम्यूनिस्ट सेंटर ऐसे संगठन हैं जो हिंसा में लिप्त हैं।

3. वे कहां-कहां सक्रिय हैं?

भारत का वह मध्य भू-भाग जो सब से कम विकसित है, नक्सलियों की गतिविधियों का केन्द्र है। यहां वे ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों, विशेषरूप से लम्बे जंगलों में सक्रिय हैं। उत्तर से दक्षिण तक यह झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, पूर्वी महाराष्ट्र तथा तेलंगाना में और (उत्तर पश्चिम में) आंध्र प्रदेश और पश्चिमी उड़ीसा तक फैले हुए हैं। उत्तर प्रदेश के उन क्षेत्रों में जो नेपाल से मिले हैं, यह सक्रिय नजर आते हैं। पश्चिमी बंगाल और बिहार में माओवादियों के नाम से जाने जाते हैं। प्यूपिल्स वारविशेषरूप से आन्ध्र प्रदेश, पश्चिमी उड़ीसा और पूर्वी महाराष्ट्र में सक्रिय हैं, जबकि माओस्टि कम्यूनिस्ट सेन्टर बिहार, झारखण्ड और उत्तरी छत्तीसगढ़ में सक्रिय हैं।

4. वे किसका प्रतिनिधित्व करते हैं?

नक्सलियों का दावा है कि वे भारत के सबसे कुचले हुए लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं, विशेषकर वह लोग जिन तक भारत का विकास नहीं पहुंचा है और चुनाव प्रक्रिया में नजरअंदाज कर दिये गये हैं। आमतौर पर यह आदिवासी, दलित और सब से निर्धन लोग हैं, जो मात्र कोड़ियों के लिए भूमिहीन मजदूरों की हैसियत से काम करते हैं।

5. नक्सली किसे निशाना बनाते हैं?

विचारात्मक दृष्टि से नक्सलियों का दावा है कि वे उस भारत का विरोध करते हैं जिस रूप में वह आज अस्तित्व में है। उनका विश्वास है कि भारतीयों को भूख और वंचना से मुक्ति पाना है और यह कि धनी वर्ग-भू-स्वामी, उद्योगपति, व्यापारी इत्यादि उत्पादन के साधन पर नियंत्रण रखते हैं। उनका अंतिम लक्ष्य है वर्तमान व्यवस्था को उखाड़ फेंकना, परिणाम स्वरूप राजनीतिज्ञों, पुलिस अधिकारियों, जंगल के ठेकेदारों इत्यादि को वे निशाना बनाते हैं।

गांवों में नक्सली भू-स्वामियों को निशाना बनाते हैं। विशेषरूप से उन से पैसा उघाते हैं। क्योंकि वे आदिवासियों और भूमि-हीनों के लिए लड़ते हैं, अतः अक्सर वे इनसे टैक्स वसूलते हैं। यह सरकार का शासन कम उनका ज्यादा है।

6. आंदोलन की विचारधारा का आधार क्या है?

नक्सली संघर्ष चीन के माओत्से तुंग की विचारधारा पर आधारित है, जिसका उद्देश्य भारतीय क्रान्ति को जन्म देना है। हिंसा इसका आधार है। आंध्र प्रदेश में यह विचारधारा बहुत मजबूत है।

7. क्या कभी यह आंदोलन लोकप्रिय हुआ ?

1960 और 1970 की दहाइयों में नक्सलवाद लोकप्रिय था। विशेषरूप से इसमें कई बड़े-बड़े कालेजों के मेधावी छात्रों ने भी दिलचस्पी दिखाना शुरू की थी। वे आदिवासियों और भूमिहीनों के अधिकारों की वकालत करते थे। बहुत से बड़े बुद्धिजीवियों का भी इसको समर्थन मिला। सामाजिक कार्यकर्ताओं की सहानुभूति इस आंदोलन के साथ थी। विनायक सेन ज्वलंत उदाहरण हैं जिनको उग्र कैद की सजा सुनाई गयी है। यह तथ्य कि हजारों पुरुषों और महिलाओं ने इस आंदोलन में शिरकत की है, यह सिद्ध करता है कि यह जीवित है।

8. क्या नक्सलियों का विरोध होता है?

हां, आंदोलन के पूरे दौर में नक्सलियों को विरोध का समना करना पड़ा है, पडना भी चाहिए। उदाहरण के लिए जून 1960 की दशक में पश्चिमी बंगाल में यह आंदोलन आरम्भ हुआ तो सीपीएम (एम) ने कांग्रेस की सहायता से माओवादियों पर गहरे आघात किये। लगभग तब इसे कुचल दिया गया। ग्रामीण स्तर पर नक्सलियों की आतंकी हरकतों को जवाब देने के लिए स्थानीय सेनाएं लामबंद हुईं। जिनको भू-स्वामियों का समर्थन प्राप्त था। इनमें सबसे बड़नाम रणवीर सेना बिहार और झारखंड में है। यह भूमिहीन भू-स्वामियों द्वारा बनाई गयी थी। इन सेनाओं ने सैकड़ों आदिवासियों, दलितों और भूमिहीन मजदूरों को मार डाला।

9. इनकी क्या आलोचना होती है ?

इनकी आलोचना यह है कि बावजूद अपनी विचारधारा के, वे मात्र एक दूसरे प्रकार के आतंकवादी बन गये हैं। यह मध्यवर्गीय भू-स्वामियों से धन वसूली करते हैं और सब से बुरा पहलू यह है कि उन आदिवासियों और ग्रामीणों के जीवन को प्रताणित और नियंत्रित करते हैं जिनका प्रतिनिधित्व करने का यह दावा करते हैं। यह महिलाओं का शारीरिक शोषण करते हैं।

10. आंदोलन की वर्तमान स्थिति क्या है?

2008 से लेकर आज तक (फरवरी 2011) नक्सलियों की हिंसात्मक गतिविधियों में बहुत बढ़ोत्तरी हुई है। 2010 में इन्होंने लगभग 200 लोगों की जिनमें पुलिसकर्मी भी शामिल हैं हत्या की है। रेलवे ट्रैक उड़ाये हैं, रेलवे स्टेशन जलाये हैं, रेलों पर हमला किये हैं जिनमें जनानेश्वरी एक्सप्रेस को उड़ाकर 145 लोगों का मार डालना शामिल है। कुल मिलाकर स्थिति गंभीर है और पुलिस तथा अर्धसैनिक बल इनके खिलाफ लामबंद है। कितने नक्सली मारे जाते हैं यह स्पष्ट नहीं है।

### 10.12 सारांश

नक्सली संगठनों का लक्ष्य नवीन लोतांत्रिक क्रान्ति लाना बताया गया है। हथियार बंद संघर्ष इस लक्ष्य का समाधान है। लेकिन आंदोलन की विवेचना से पता चलता है कि इन संगठनों का विशेषरूप से सी0पी0आई0 (एम) का बल हिंसा पर अधिक है और लक्ष्य प्राप्ति पर कम। यदि वे सत्ता में आते हैं तो इनके सुधार क्या होंगे, यह स्पष्ट नहीं है। क्या इनका राज्य समाज, नौकरशाही विहीन, पुलिस विहीन तथा बुर्जुआ विहीन होगा, इस प्रश्न का उत्तर इनके पास नहीं है। सोवियत संघ टूटने तथा खुले बाजार की अवधारणा ने इनको द्वन्द की स्थिति में ला दिया है। इससे पता लगता है कि नक्सली और उनके संगठन विचारात्मक दृष्टि से दिवालिये हैं। उदाहरण के लिए पी0डी0जी0 में नकारात्मक तो बहुत है, सकारात्मक का आभाव है।

हाल के दिनों में जो सूचनाएं आ रही हैं नक्सली आंदोलन अराजकता की ओर है। आदिवासियों का शोषण, उनसे कर वसूली, जबरन भर्ती, महिलाओं का शारीरिक शोषण नक्सलियों की प्रतिदिन की गतिविधियां हैं। रोलों पर, बसों पर, रेलवे स्टेशनों और सरकारी दफतरों पर हमला करना, आगजनी करना और आम निर्दोश लोगों का मारना मजूमदार की विचारधारा के विरुद्ध है। लेकिन यह सब कुछ हो रहा है।

सरकारी स्तर पर नक्सलवाद से निपटने के लिए दो रास्ते चुने गये हैं-हिंसा का प्रतिरोध पुलिस बल से और आदिवासी पिछड़े क्षेत्रों का विकास। लेकिन नक्सल हिंसा से प्रभावित राज्यों के मध्य इस समस्या से निपटने में एकरूपता नहीं है। इसलिए शासकीय कदम प्रभावशाली नहीं है। दूसरे अन्तरराजनीतिक दलों ने इस आंदोलन के माध्यम से अपने हित साधे हैं, जो नक्सलवाद को जन्म देते हैं।

### 10.13 शब्दावली

1. मिलिटेंट : लड़ाकू जो आंदोलन के लिए हिंसा का रास्ता अपनाएं
2. रीएक्शनरी : प्रतिक्रियावादी जो भूमिस्वामी, बुर्जाई, सामन्ती पूंजीवादी हैं जो आंदोलन कुचलना चाहते हैं।
3. रिवीशनिस्ट : संशोधनवादी जो क्रान्तियों को अपनी दृष्टि से परिभाषित करते हैं, समझोते करते हैं।
4. बुर्जाई : वह वर्ग जो सामन्ती या पूंजीपति है।

### 10.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

---

भारतीय सरकार एवं राजनीति	-	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति	-	महेन्द्र प्रताप सिंह

**10.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री**

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

**10.16 निबंधात्मक प्रश्न**

1. नक्सली आंदोलन वामपंथी राजनीति का परिणाम है, स्पष्ट कीजिए।